गिरि चढ़ देखा दूर से—लङ्कानगर विशाल ।
जहाँ राक्षसों के सहित रहता था दशभाल ॥

कञ्चन का दुर्ग समुद्र-मध्य, सुन्दर चौहट्ट हाट का था ।
सब राजपाट, सब घाट-बाट, सब ठाट विराट ठाट का था ॥
वह स्वर्णद्वीप, वह स्वर्णदेश सचमुच कुबेर की नगरी थी ।
जिसमें वसुधाभर की सम्पत् उन यक्षराज ने रक्खी थी ॥
सौतेले भाई रावण ने—उसपर अधिकार जमाया था ।
यक्षों के लिए भगाया था, असुरों को वहाँ बसाया था ॥
वह शैव, विभीषण विष्णुभक्त घननाद शक्ति कहलाता था ।
पाण्डित्य, कला-कौशल बल में, कुल ऊँचा समझा जाता था ॥
विज्ञान-वादिता इतनी थी, बन गई रूप नास्तिकता का ।
भोजन विलास मादकता ही—था लक्ष्य प्रजा का, राजा का ॥
इतना था प्रबल निशाचर दल—भूतल जिससे थर्राता था ।
प्रत्येक देश को दबा दबा—अपना दबदबा बढ़ाता था ॥

सूक्ष्म रूप धर रात में—पहुँचे श्रीहनुमान ।
मिली लङ्किनी राक्षसी, काली निशा-समान ॥

सब बाल व्याल थे खुले हुए सिन्दूरी तिलक भाल पर था ।
दो दाँत चमकते थे बाहर, हाथों में खड्ग भयङ्कर था ॥
बजरङ्गी की आहट पाकर—सम्मुख आई किटकिटा उठी ।
'मैं तुझको खा ही जाऊँगी'—यह कह खाँडा खड़खड़ा उठी ॥

बजरङ्गी कहने लगे—"चल हट, होजा मौन ।
रामदूत से विश्व में—भिड़ सकता है कौन ?
मैं महावीर कहलाता हूँ हनुमत् है विदित नाम मेरा ।
तुझसी चुड़ैलियाँ हनता हूँ यह भी है एक काम मेरा ॥

नभवाली सात्त्विक सुरसा को-आया हूँ जीत बुद्धिबल से ।
जल की तामसी सिंहिका को कर दिया नष्ट क्रोधानल से ॥
थल पर राजसी लंकिनी को-अब मुष्टिक मार गिराऊँगा ।
जीतूँगा जब त्रिगुणी माया तब भक्ति-मातु को पाऊँगा ॥"

यह कह हल्के हाथ से—मुष्टिक मारा एक ।
गिरी घूम वह भूमि पर जागा पूर्व विवेक ॥

बोली—"ब्रह्मा ने रावण को जब लंकाधीश बनाया था ।
लंकिनीरूप मुझ लंका को-तब यह भविष्य बतलाया था ॥
मुष्टिक प्रहार कर महावीर-जिस दिन तुझ पर जय पाएँगे ।
बस तभी समझ लेना निश्चय-निशचर सब मारे जाएँगे ॥
जो वाणी से मत, पग से तम, कर से रज पर--जय पाता है ।
ऐसा ही बाल ब्रह्मचारी, निर्गुण को निश्चय पाता है ॥
हनुमान तुम्हारे दर्शन कर—मैं बड़भागिनी महान हुई ।
इन चरणों की रज से लंका—सचमुच कैलास समान हुई ॥
हे महावीर, हे महाधीर, रघुवर का तुझ पर हाथ रहे ।
जा बेखटके अब लंका में, जय और सफलता साथ रहे ॥

❀ गाना ❀

—:०:—

"जा बजरंगी, जा रणरंगी, गुण के संगी—योद्धा जंगी ले नाम श्रीरामजी का ।
जा, जा, बजरंगबली निर्भय हो लंका में तेरी जय हो, निशचर के दल को क्षय हो ॥
हाँ, तोड़ बहादे-आग लगादे, वीर बजादे लंका में डंका ! ले नाम श्रीरामजी का ॥"

—०—

सीतापति रघुनाथ का, बार बार ले नाम ।
उधर हटी वह लङ्किनी, इधर बढ़े बलधाम ॥

प्रत्येक भवन में रावण के—ढूँढा श्रीसीता माता को ।
शयनालय से बन्दीगृह तक—खोजा श्रीसीता माता को ॥

चप्पा चप्पा, कोना कोना—छाना राक्षस की नगरी का ।
पर, पता न लगा कहीं पर भी—रघुकुल-महिला वैदेही का ॥
होकर हताश होकर निराश किस तरह बनेगा काम ?" कहा ।
अन्तर आत्मा ने उसी समय 'श्रीराम' कहा 'जयराम' कहा ॥

## ❀ गाना ❀

"श्रीराम, जय राम, जय जय राम ! श्रीराम, जय राम, जय जय राम ।
मेरा बलबुद्धि पराक्रम आया तनिक न काम, अपने बल से कार्य अब पूर्ण करालो राम
भटक अँधेरे में रहा हो निराश अविराम दो प्रकाश इस दास को हे रविकुल रवि राम

—: ० :—

अकस्मात् देखा तभी एक मनोहर धाम ।
द्वारे जिसके लिखा था—'राम राम श्रीराम' ॥
झाँका तो—देखा—आँगन में तुलसी बिरवे थे लगे हुए ।
दीवारों, खम्भों, आलों पर—सद्धर्म वाक्य थे लिखे हुए ॥
बजरंगी ने सोचा—"कोई हरि-भक्त यहाँ पर रहता है ।
पर इस राक्षस नगरी में यह—कैसे व्यतीत दिन करता है ॥
यदि कोई सज्जन आस्तिक है तो इससे मिलना बुरा नहीं ।
फिर बिना एक भेदी के भी हो सकता अपना भला नहीं ॥"
रात शेष थी पहर भर, होनहार था काज ।
'राम-राम' कहते हुए—जगे विभीषणराज ॥
वह घरवाला वह गृहस्वामी, दूषण नगरी का भूषण था ।
रावण का छोटा भाई था उसका शुभ नाम विभीषण था ॥
यह घटना पिछली, तब की है दशकन्धर जब तप करता था ।
उस समय विभीषण भाई भी—जगदीश्वर का जप करता था ॥
मैं मरूँ न यक्ष राक्षसों से वरदान लिया यह रावण ने ।
'हरि भक्ति' प्राप्त हो जाय मुझे—माँगा यह वचन विभीषण ने ॥

तब से ही भक्त विभीषण में–दिन पर दिन भक्ति बढ़ रही थी ।
उस भक्तिभाव के साथ-साथ–सेवा की शक्ति बढ़ रही थी ॥
हनुमत् ने जब धर विप्ररूप, बाहर से जय 'श्रीराम' किया ।
सानन्द विभीषण उठ आए ब्राह्मण को देख 'प्रणाम' किया ॥
कहा–"धन्य हूँ आज मैं, पा ऐसा मेहमान ।
क्या आज्ञा है दास को बतलाएँ श्रीमान ?
हे विप्र, आपको देख देख–यह हृदय आप ही खिंचता है ।
हैं निश्चय आप भक्त कोई–यह मुझे दिखाई पड़ता है ॥
बड़भागी करने आए हैं–क्या मुझसे मूढ़ निशाचर को ?
हे महाराज, श्रीचरणों से करिए पवित्र मेरे घर को ॥
जो कुछ भी–रामप्रसादी है, फल, कन्द, मूल स्वीकार करें ।
अपने इस दास विभीषण पर अपना इतना उपकार करें ॥
'नाम-विभीषण और फिर यह प्यारा व्यवहार' !
धीरे–धीरे इस तरह—बोले पवनकुमार—
"अचरज है–कागों के दल में, यह हंसरूप दर्शन कैसा !
काँटों से भरे करीलों में–मलियागिरि का चन्दन कैसा !!
असुरों में कैसे भक्तराज, तुम जीवन यापन करते हो ?
रावण की सेवा में रहकर श्रीरामोपासन करते हो ॥"
वे बोले–"जैसे जिह्वा है बत्तीस नुकीले दाँतों में ।
रहता है दास विभीषण भी–बस उसी प्रकार राक्षसों में ॥"
कपि बोले–"मुँह की बत्तीसी सब टूट-फूट गिर जाएगी ।
पर, जिह्वा जीवनभर रहकर श्रीराम नाम-गुण गाएगी ॥
भक्त विभीषण, धन्य तुम धन्य तुम्हारा प्रेम !
धन्य तुम्हारी धारणा धन्य तुम्हारा नेम ॥

जो सज्जन हैं सत्सङ्गी हैं, वे कहीं छिपाए छिपते हैं ?
एक ही पन्थ के दो पन्थी–इस प्रकार देखो मिलते हैं ॥
तुम भाई हुए आज मेरे–अब तुमसे मुझे कपट क्या है ?
सब गुप्त रहस्य सुनाता हूँ–जो अभी छुपाकर रक्खा है ॥
यों तो छल और कपट जग में–पातक ही समझा जाता है ।
पर, भक्त वैष्णवों के सम्मुख–वह महापाप कहलाता है ॥
ब्राह्मण–शरीर का धोखा है, मैं हनूमान हूँ बानर हूँ ।
सीता सुधि लेने आया हूँ रामचन्द्र का अनुचर हूँ ॥"

"राम-दास ! मेरे यहाँ ! जागृति है या स्वप्न ?"
भक्त विभीषण हुए कुछ–इसी ध्यान में मग्न ॥

कह उठा हृदय–खुल गया भाग्य, आए श्रीरामदुलारे हैं ।
ब्राह्मण से भी यह बड़े मुझे मेरे प्यारे के प्यारे हैं ॥"
फिर कहा प्रकट–"हैं धन्य आप, जो राघवेन्द्र के अनुचर हैं ।
क्या मुझ अनाथ निश्चर के भी–रघुनाथ बनेंगे नाथ कभी ?
क्या मुझसे अधम दास को भी–रक्खेंगे राघव साथ कभी ?
सीता की सुधि पीछे लेना–पहले मेरी सुधि लो भाई ।
जिन चरणों में रह रहे आप, मुझको भी पहुँचा दो भाई !!

## * गाना *

वह दिन कब होगा भ्रात, मिले रघुनाथ दया दिखलाएं, इस सेवक को अपनाएं ।
वह होगा स्वर्ण प्रभात, मिटेगी रात, नाथ मिल जाएं, इस सेवक को अपनाएं
जी भरकर कब हम रोएंगे ? कब उन चरणों को धोएंगे ?
कब पुष्प चढ़ाकर भावों के श्रद्धा के दीप सँजोएंगे ?
अन्तर्यामी भगवान् न देर लगाएं इस सेवक को अपनाएं ।।"

—: ० :—

देख विभीषण की दशा, पुलके पवनकुमार !
यमुना से गङ्गा मिली, बढ़ा सनेह अपार ॥
बोले–"भगवान् दयानिधि हैं, अपने को नित अपनाते हैं ।
जो जन उनकी शरणागत हो छाती से उसे लगाते हैं ॥
यह रीति सदा से है उनकी–करते हैं प्रीति सेवकों से ।
जो उनका ही हो जाता है, निर्भय रहता है कष्टों से ॥
उनसे मिलने की राह यही–विश्वासी हो जाओ भैया ।
अपना सब उनके अर्पण कर–उनके ही हो जाओ भैया ॥
मन्त्रों से जैसे सप्तसिन्धु आजाते एक कलश में हैं ।
त्योंही–भावना विमल हो तो–भगवान भक्त के वशमें हैं ॥
है सत्य जहाँ—भगवान् वहीं, है प्रेम जहाँ भगवान् वहीं ।
हो जाता दयापात्र जब जन मिलते हैं दयानिधान वहीं ॥
मुझको ही देखो–वानर हूँ, उपचार, ध्यान जानता नहीं ।
चरणों की सेवा के सिवाय–दूसरा ज्ञान जानता नहीं ॥
फिर भी वह मुझे देखते हैं तो हृदय कमल खिल जाता है ।
सम्पूर्ण कृपा देदी मुझको–ऐसा अनुभव में आता है ॥
तुम भी तज साथ राक्षसों का, आजाओ भालु कपिगणों में ।
आचरणों को पाला अबतक–तो अब पहुँचो आ–चरणों में ॥
इतना बतलादूँ–जीवात्मा–जब पास ब्रह्म के जाता है—
तो उसके पीछे पीछे सब–माया का वैभव आता है ॥
हो सकता है वह दिन आए, जब भाग्य इस तरह चमका हो ।
सिर पर हों राम विभीषण के–चरणों पर सारी लंका हो ॥
इसलिए जाति भ्रातादिक के सम्बन्धों में अब रत मत हो ।
मेरे मत से–हे भक्तराज, रघुनायक के शरणागत हो ॥

मैंने तो यह ही समझा है, इसमें ही सब आजाता है ।
मालिक का जो हो जाता है, मालिक को वह पा जाता है ॥

## * गाना *

जो लौ रामजी से लगाता रहेगा, वो जीवन को सुख से बिताता रहेगा ।
हृदय में उसी के रहेंगे सदा वो, हृदय से जो नाम उनका गाता रहेगा ॥
जिएगा जगत्पति का होके जो जग में—जगत् में वही जगमगाता रहेगा ।
कृपा कोर होगी कृपासिन्धु की जब—तो बेड़ा नहीं डगमगाता रहेगा ॥
स्वभाव उनका पहचानकर काम करना—तभी स्वामि सेवक का नाता रहेगा ।
जो तू 'राधेश्याम' उनका सुमिरन करेगा तो उनको भी तू याद आता रहेगा ॥"

—* ० *—

भक्त विभीषण होगए—क्षणभर को गम्भीर ।
गद्गद् उनकी गिरा थी—नयनों में था नीर ॥
बोले—"प्रत्यक्ष आज देखी—महिमा मैंने सत्संगत की ।
सत्संगत—क्षणभर में धोती श्यामलता जीवन रंगत की ॥
जग के सब लाभ पराजित हैं सत्संगत वाले लाभों से ।
स्वर्गादि तुच्छ हैं—तुलने पर—सत्संगत-सुख के बाटों से ॥
तुम नहीं मिले हे रामदास, जग गए भाग सोते के हैं ।
इस समय जन्म जन्मान्तर के सब पुण्य इकट्ठे प्रकटे हैं ॥
अच्छा, अब जिस कारण आए, उस सेवा में जाओ भाई ।
हैं मात 'अशोक-वाटिका' में—सुधि उनकी ले आओ भाई ॥
यों तो कुछ गुप्त सेविकाएँ, इस सेवक ने भी रक्खी हैं ।
रहकर 'अशोकावन' में भी वे मेरी निगाह में रहती हैं ॥
लङ्कानगरी में भी सीता मिथिलापुर ही की सीता हैं ।
श्रीरामचन्द्र—चन्द्रानन की ज्योतिर्मयि स्वच्छ चन्द्रिका हैं ॥
वे माता हैं तुम भ्राता हो, दोनों का तुच्छ दास हूँ मैं ।
निर्भय विचरो लङ्कापुर में छाया की तरह पास हूँ मैं ॥

## ❀ गाना ❀

तेरी जय हो, जय हो, जा—बजरङ्गी निर्भय हो जा ।
युद्धजीत जा, शत्रुजीत जा, कालजीत जा, कामजीत जा ।
आगे बढ़कर, सम्मुख आकर, जमकर, जयकर, जा जा, जा ॥
है रखवाले, जग—रखवाले, उजियाले बलवाले बुद्धिवाले जा ॥

— ० —

पग-पग पर जय ने दिया—इनको हर्ष महान ।
तभी चले अञ्जनितनय—कह 'जय कृपानिधान' ॥
उत्साह वही, आदर्श वही, चिन्तन वह ही सीता का था ।
अनुराग वही, अभिलाष वही, वह ही स्वरूप छोटा सा था ॥
पहुँचे अशोकवन में जब यह तो दृश्य विचित्र उपस्थित था ।
कहने को वह अशोक था—पर सर्वत्र शोक आच्छादित था ॥
सुनसान विपिन की कुटिया में कुछ रजनीचरी उपस्थित थीं ।
बाहर पत्थर पर प्रतिमा सी वैदेही ध्यानावस्थित थीं ॥
पृथ्वी की ओर देखती थीं टकटकी लगाए बैठी थीं ।
मटियाली, बड़ी-बड़ी अलकें—मुखड़े के ऊपर बिखरी थीं ॥
सब अङ्ग विरह की झुलसन से, होरहे सूखकर काँटा है ।
थीं ऐसी क्षीणकाय, मानों हड्डी चमड़ी का ढाँचा है ॥
आँखों में राम रम रहे थे—विश्वास हृदय में गहरा था ।
यद्यपि सब ओर अशोकों के—राक्षसियों का भी पहरा था ॥
इतने संकट होने पर भी, मनबल पर अपने जीवित थीं ।
था चारों ओर धुआँ फिर भी, वे अग्निशिखा-सी दीपित थीं ॥
थी नहीं वियोगिनि, योगिनि थीं, गोदी में माँ वसुन्धरा की ।
आकाशदेव की छाया थी, रक्षा थी पवनदेवता की ॥
रामदूत ने दूर से समझी सारी बात—
"कुण्डल फेंके—जिन्होंने—हैं यह वह ही मात ॥

रघुवर में लीन प्राण इनके, रघुवर इनके प्राणों में हैं ।
इसलिए कष्ट सहकर भी यह अवतक जीवित असुरों में हैं ॥
नारी सुन्दरता पति है, पतिसेवा से यह वञ्चित हैं ।
इस कारण सुन्दर होकर भी—शोकातुर धूलि-धूसरित हैं ॥
संसार राम सीता तक को, जब इतने संकट देता है—
तब साधारण जीवों की तो इस जग में गिनती ही क्या है !!
चरणों में अभी लोट जाऊँ-जी तो मेरा यह कहता है ।
घबरा जाएँ माता न कहीं—यह संशय रह-रह—उठता है ॥
अच्छा मन ही मन है प्रणाम शुभ दिन तो सम्मुख आया है ।
बड़भागी है यह रामदूत—माँ का दर्शन तो पाया है ॥"

पत्ते खड़के उसी क्षण, गगन हुआ कुछ लाल ।
दिखलाई दी दूर से—जलती हुई मशाल ॥
समझ लिया आरहा है—इसी ओर दसमाथ ।
मन्दोदरि आदिक कई—सुन्दरियाँ हैं साथ ॥

सोचा—"थोड़ी सी रात रही—यह अवसर तो पूजा का है ।
रावण इस समय आरहा है ! क्या है रहस्य कारण क्या है ॥
राक्षस भी है माता भी हैं छुपकर देखूँ क्या होता है !
सब भेद जानकर ही प्रकटूँ इस अवसर यह ही अच्छा है ॥"

यद्यपि माँ की दशा से व्याकुल थे हनुमन्त ।
फिर भी वृक्ष अशोक में, छुपे रहे बुद्धिमन्त ॥
दशकन्धर आया इधर बोल उठा कर जोर—
"कृपादृष्टि से देख ले सीते ! मेरी ओर ॥"
यह सुनते ही सिया के-लगी हृदय में चोट ।
बोलीं नीची दृष्टि से-कर तिनके की ओट—

"कांक्षा थी कृपादृष्टि की तो, वह शिवधन्वा तोड़ा होता ।
बल था तो उसी स्वयंवर में मुझसे नाता जोड़ा होता ॥
तू योद्धा नहीं चोट्टा है हरकर लाया है अबला को ।
छल-बल अब भी दिखलाता है, समझा ही नहीं सत्यता को ॥"

वह बोला-"छल-बल नहीं, नहीं और कुछ ध्यान ।
दशकन्धर तो चाहता-दयादृष्टि का दान ॥
पर, तुममें अबतक पर्दा है आँखें नीची ही रखती हो ।
तिनके की ओर देखती हो बातें दशमुख से करती हो ॥
तिनका क्यों लक्ष्य तुम्हारा है ? क्यों उसे बीच में लाती हो ।
क्या तिनका मुझे समझ रक्खा जो तिनका मुझे दिखाती हो ॥"

तिनकेवाली ने कहा-"सुन तिनका की बात ।
पृथ्वी मेरी मात है, तिनका मेरा भ्रात ॥
जिन चरणों की दासी हूँ मैं तिनका है तिनका दास सदा ।
यह मन है जिनके पास सदा-तिनका भी तिनके पास सदा ॥
हे तिनके से भी गिरे जीव, तिनका ही मेरा पर्दा है ।
घूँघट का पर्दा पर्दा क्या ? पर्दा तो आँखों ही का है ॥
पहुँचादे पास उन्हीं प्रभु के सीता से नाता है जिनका ।
अन्यथा, एक दिन असुर तुझे धिक्कारेगा तिनका तिनका ॥
सम्पूर्ण रात जुगनू चमकें उनसे कब नलिनी खिलती है ।
होता है प्रातःकाल जभी तब स्वयं कमलिनी खिलती है ॥
यह आँखें अगर कमलिनी हैं, तो इनके प्रिय श्रीरघुवर हैं ।
तू जुगनू से भी घटकर है वे सूरज से भी बढ़कर हैं ॥"

'लंकापति खद्योत-सम, रवि सम-अवधकुमार' ।
रावण यह सुन जल उठा, कहा खींच तलवार—

"अबतक कर जोड़ नम्रता से, मैंने तुझको समझाया है ।
पर तूने जब-जब आया मैं—अपमानित कर ठुकराया है ॥
अब अन्तिम बार कह रहा हूँ यदि नहीं मुझे अपनाएगी ।
तो यह तल्वार—एक क्षण में—उस पार तुझे पहुँचाएगी ॥"

रावण की ललकार से—डरी नहीं जगदम्ब ।
महाबली, नारायणी बोल उठीं अविलम्ब—

"हे कायर पामर, रजनीचर क्यों पशुबल पर इतराता है ?
पिंजरे में फँसी सिंहिनी को, नङ्गी तल्वार दिखाता है ?
तल्वार मुझे मेरे सत को, सत यह है काट नहीं सकती ।
मेरा पावन पवित्र लोहू यह पतिता चाट नहीं सकती ॥
सतवन्ती का सत तो सदैव सत की कृपाण पर रहता है ।
व्रत पतिव्रता क्षत्राणी का सब समय प्राण पर रहता है ॥
मत समझ अकेली है सीता, उसका मालिक है साथ सदा ।
इस रोम-रोम में, रग-रग में रम रहा राम रघुनाथ सदा ॥
पर नारी को हरकर लाना—क्या बलवानों की बातें हैं ?
तलवार उठाना अबला पर—क्या मर्दानों की बातें हैं ?
लङ्केश नहीं कायर है तू लंका में मुझे छुपाया है ।
जा, लजा डूबजा जलनिधि में, क्यों खड्ग दिखाने आया है ॥
वह हाथ जल नहीं जाते क्यों—जिनमें यह खड्ग उठाई है ?
नभ के नक्षत्र न अन्धे हैं, बहरे न पवन के झोके हैं ।
तृण-तृण अशोक-उपवन के अब बदला लेने को उद्यत हैं ॥
अगणित आँखों से यह अधर्म वह व्यापक देव निरखता है ।
इन पेड़ों में इन पत्तों में—बैठा कोई सब सुनता है ॥

## ❀ गाना ❀

लंकेश हरण तूने जनकात्मजा न की है।
करनी अजान की सी होकर सुजान की है॥
आया है लेने बदला ऋषिरक्त इस बहाने।
यह जान ले घड़ी अब लंका के जाने की है॥
आजानु भुजाओं ने जब शिव का धनुष तोड़ा।
क्या शक्ति उनके आगे—बीसों भुजान की है॥
पर-नारि को चुराना, है मौत का बुलाना।
मत खेल समझ इसको बाजी यह जानकी है।
घट घट में है जो व्यापक—रक्षक वही है मेरा।
है जानकी के रघुवर, रघुवर की जानकी है॥"

— ० —

यह सुनते ही होगया—दशमुख फिर विकराल।
खड्ग तान संहार को—दौड़ पड़ा तत्काल॥
बोला—"देखूँ तो सही करता कौन सहाय?
घट-घट व्यापक है कहाँ? अभी प्रकट हो जाय!"
जभी तोल तल्वार को—धाया राक्षसनाथ।
'सर्वेश्वर कह, सिया ने झुका दिया निज माथ॥
घट-घट व्यापक ने दिया परिचय वहीं तुरन्त।
मुख से मन्दोदरी के, बोला वह भगवन्त—
"ठहरो, क्या कर रहे हो? अनुचित है यह नाथ!"
इतना कह, पकड़ा तुरत पीछे से वह हाथ॥
रानी ने जब समझाया तो—आया विचार कुछ राजा को।
जाते-जाते निशचरियों से, बोला कि—"सताओ सीता को॥
देता हूँ समय तीन दिन का, तब तक न उचित उत्तर होगा।
तो करनी का फल पाएगी यह खड्ग और वह सर होगा॥"

मन ही मन उधर कहा कपि ने—"माँ का न मलिन अञ्चल होगा।
उसके पहले मेरा मुष्टिक—तेरा वह वक्षस्थल होगा॥"
तरुवर अशोक के बोल उठे—'हम उससे प्रथम उजड़ते हैं।'
लंका के महल लगे कहने—'उसके पहले हम जलते हैं॥'

त्रिजटा नामक निश्चरी थी चतुरा अत्यन्त।
चला गया दसशीस तो वह कह उठी तुरन्त—

"निश्चरियो, सुनो ध्यानपूर्वक जो कुछ भी है सपना मेरा।
मानना पड़ेगा अब तुमको—आदेश और कहना मेरा॥
मैंने सपने में देखा है दशकन्धर का संहार हुआ।
लङ्का पर भक्त विभीषण का—राजा जैसा अधिकार हुआ॥
बन्दिनी आज हैं रामप्रिया कल सम्राज्ञी कहलाएँगी!
हम कष्ट इन्हें देंगी तो यह बदले गम्भीर चुकाएँगी॥
इस कारण मैं यह कहती हूँ—लग जाओ इनकी सेवा में।
सज्जनता सदा लाभ देती होती है हानि दुष्टता में॥"
असुरा त्रिजटा के मुख से भी जब प्रकट विश्व आधार हुआ।
रजनीचरियाँ सेविका बनीं कपिवर को हर्ष अपार हुआ॥

चली गईं सब राक्षसीं—निज—निज गृह की ओर।
तब त्रिजटा से जानकी बोलीं यों कर जोर—

"तू मेरी मात धर्म की है मन की मैं तुझसे कहती हूँ।
पतिविरह-विपत् सहते-सहते जीते जी पूर्ण मर चुकी हूँ॥
अब इस शरीर के ढाँचे को कर डालूँ भस्म यही अच्छा।
दो पल नहीं—दो घड़ियों में तजदूँ यह प्राण तभी अच्छा॥
लकड़ियाँ बीन मैं लाती हूँ तू भी कुछ मुझे सहारा दे।
मैं चिता बनाए लेती हूँ जा आग कहीं से तू ला दे॥"

त्रिजटा ने देखा जभी इतना दारुण ताप ।
समझाया रघुनाथ का उनको प्रबल प्रताप ॥
मिथिलेशनन्दिनी, धीर धरो, क्यों इतनी व्याकुल हो कल से ?
उस सूर्यवंश के सूर्य राम, अब उदय हुए उदयाचल से ॥
थोड़े दिन और रह गए हैं, धीरज ही धारो वैदेही ।
जिस व्रत को अब तक पाला है, आगे भी पालो, वैदेही ॥
थक गईं, कष्ट पर कष्ट सहे, सम्पूर्ण शरीर सुखाया है ।
फिर भी है धन्य तुम्हें देवी, तुमने पतिधर्म निभाया है ॥"
माता के विमल चरित्रों की-पाई जब साक्षी त्रिजटा से ।
पत्तों में छुपे दूत का तन पुलका उट्ठा तब श्रद्धा से ॥
सीखो, हे दुनियाँ की बहनों, पतिधर्म, पतिव्रत सीता से ।
पतिवियोग में जीवन रखना-रहना इस भाँति तपस्या से ॥
पति के हित राजमहल तजकर-बन-बन के सङ्कट सहना, यों ।
बेपता छूटकर फिर पति से-राक्षस के मुँह में रहना, यों ॥
अखिर अब चिता बनाई है पतिव्रत पर आँच न आने दी ।
बलिहारी भारत की देवी-भारत की लाज न जाने दी ॥

'अभी रात है इस समय कहाँ मिलेगी ज्वाल ?'
यह कह त्रिजटा भी गई, उस अवसर को टाल ॥
सन्नाटा सब ओर था पत्ते तक थे शान्त ।
सम्मुख आधी चिता थी नीरव निठुर, नितान्त ॥
नयन चिता की ओर थे मन रघुवर की ओर ।
हृदयसिन्धु में विरह की, उठने लगी हिलोर ॥
पक्षी तन पींजरे में, रह न सका चुपचाप ।
रो रोकर श्रीजानकी-करने लगीं प्रलाप ॥

## ❀ गाना ❀

"जबतलक प्राण प्यारा न होगा दुःख से छुटकारा न होगा ।
प्रारब्ध में जब ऐसी ही संकट की घड़ी है, विधना भी बदलता नहीं जब दृष्टि कड़ी है
तब तो यही है सिद्ध-प्रकृति पीछे पड़ी है, होता है भान-मृत्यु मुझे लेने खड़ी है ।।
तो मैं भी प्राण त्याग दूँ यह जी में अड़ी है । विरह अब तो गवारा न होगा ।
ऊंच से गिरिशिखर जरा पीछे तुही हटजा, जल से भर जलनिधितनिक इस ओर पलटजा
आकाश धरणि बनके तू नीचे को पलटजा, पथरीली भूमि देर न कर शीघ्र तू फटजा
हे सत्यता हे वीरता तू सामने हट जा, शोक में अब किनारा न होगा ।।
रघुवंशियों के रक्त उबल और उछलजा, ओ सर्द चांद आज तू आतिश से बदलजा
लू बन के हे समीर तू इस बन में मचलजा पतिभक्ति, धर्मभाव, संभलजा तू संभलजा
हे प्राण, हे जीवात्मा, बस जा तू निकलजा । रोते-रोते गुजारा न होगा ।।"

—* ० *—

**ठहर गईं फिर एक क्षण, फिर कुछ उठ्ठी हूक ।**
**"प्राणनाथ" कह फिर उठा' आत्म-पखेरू कूक—**

## ❀ गाना ❀

—०—

"हाय ! मेरे प्राणजीवन अब जिया जाता नहीं ।
विरह श्रीचरणों का दासी से सहा जाता नहीं ।।
भाग्य रूठा इस कदर है, मौत भी आती नहीं ।
ज्वाल तो तन में लगी है-पर जला जाता नहीं ।।
है चिता तो सामने--पर आग मिलती ही नहीं ।
उडुगणों, तुमसे भी क्या नीचे गिरा जाता नहीं ?
हे मेरे दुख-सुख के साथी हे मेरे रक्षक अशोक !
लाल पल्लव अग्नि-सा तुझसे दिया जाता नहीं ?
कर अशोक अभी मुझे, तूतेरा नाम अशोक है—
एक ही पत्ता गिरा दें, कुछ घटा जाता नहीं ।।"

—: ? :—

**थे अशोक के वृक्ष पर, छुपे अञ्जनीलाल ।**
**देख जानकी की दशा—आया एक ख़याल ।।**
**'वृक्षों तक से अग्नि का—जब कर रहीं सवाल ।**
**हो न जाय इनमें कहीं पैदा सत् की ज्वाल ?"**

इस ख़याल से विकल जब हुए अञ्जनी लाल ।
दी-अशोक के पेड़ से तुरत अंगूठी डाल ॥
गिरते ही चमकी मुँदरी यों-मानो चमकीला तारा है ।
सीताजी बढ़ीं उठाने को-समझीं अशोक अङ्गारा है ॥
मुद्रिका परम सुन्दर थी वह, हीरा था जिसमें जड़ा हुआ ।
श्रीरामचन्द्र रघुनायक का-था नाम बीच में खुदा हुआ ॥
पहचाना जभी अंगूठी को आनन्दित सिया अपार हुईं ।
फिर कुछ विचार आए ऐसे बिजलियाँ हृदय के पार हुईं ॥
"मुँदरी विवाहवाली ही है"-इसलिए लगाई आँखों से ।
"केवट को देने को दी थी"-मैंने ही अपने हाथों से ॥
पर यहाँ किस तरह आई यह ? क्या घटना है ? क्या लीला है ।
माया ऐसी न बना सकती, दे सकता असुर न धोखा है ॥
तब ? प्राणेश्वर के प्राणों की, क्या इसमें छुपी सूचना है ?
पर रघुनायक तो हैं अजेय, इस शंका में क्या रक्खा है ?"
बँध गए ख़याल जभी ऐसे दिल पर फिर दुश्वारी आई—
इतने में-उस अशोक पर से आवाज एक प्यारी आई—

❀ गाना ❀

—:o:—

जय हो श्री राम, राम, राम, ! सियावर राम राम, राम ।
अवधनाथ सीतानाथ, जन के नाथ, जग के नाथ, राम राम राम
मां, मन की घबराहट छोड़ो, लो राघवेन्द्र का नाम ।
वानर सेना के साथ यहां आते हैं अब श्री राम
किष्किन्धा में कपिपति-द्वारा-सब ठीक हो गया काम ।
मैं रामदूत सुधि लेने आया-हो स्वीकार प्रणाम ॥"

—: oo :—

श्रवणों द्वारा जब किया-नामामृत का पान ।
तब बोलीं-"तुम दूत हो, तो क्यों अन्तर्ध्यान ?

वे जैसे ओझल रहते हैं, व्यापक होकर भी आँखों से ।
त्योंही तुम छिपते फिरते हो, पायक होकर भी आँखों से ॥
प्राकृत भाषा भी बोल रहे, चरितामृत भी बरसाते हो ।
फिर हे अशोक के गुप्त दूत, क्यों नहीं प्रकट हो जाते हो ?"

आज्ञा पाकर मातु की प्रकटे पवनकुमार ।
झिझकीं सीता देखकर रूप बानराकार ॥

तब कहा इन्होंने—"हे माता, मैं शपथ-पूर्वक कहता हूँ ।
करुणानिधि ने भेजा है—सेवा में उनकी रहता हूँ ॥
कहते हैं हनूमान मुझको सुधि लेने ही में आया हूँ ।
विश्वास आपको हो जाए—इसलिए अँगूठी लाया हूँ ॥"

हनूमान के वचन सुन—मिटा सभी सन्देह ।
दूत जान रघुनाथ का—हुआ हृदय मे नेह ॥

बोली—"मृततुल्य अवस्था को—यह मिलन अमृत की धारा है ।
अथवा हनुमान डूबते को दिखलाई पड़ा किनारा है ॥
अच्छा पहले यह बतलाओ वे अनुज सहित अच्छे तो हैं ?
खरदूषण-त्रिशरा संहारक, मेरी चर्चा करते तो हैं ?"

यह सुनकर, हनुमन्त ने कह—'जय सीताकान्त'—
सुना दिया सब आदि से अबतक का वृत्तान्त ॥

फिर कहा—"नहीं सुधि रखते तो—सुधि लेने को क्यों भेजा है ?
माँ वहाँ और कुछ बात नहीं दिन रात आपकी चर्चा है ॥
जितने दुख आप सह रही हैं, उससे दूने वे सहते हैं ।
ज्यों धान रहे बेपानी के—इस भाँति दयानिधि रहते हैं ॥
लङ्का पर रघुकुल का डङ्का, हे माँ, अब बजनेवाला है ।
वह नौका डूब नहीं सकती—जिसका राघव रखवाला है ॥

फिर राम-भजन कर रहीं आप—यह भी तो फल दिखलाएगा।
इस बल ही से वानर-मण्डल निश्चरदल पर जय पाएगा॥
दिनकर जिस समय उदय होता—फिर नहीं तिमिर रह पाता है।
हिमगिरि जब हिलने लगता है तो भूतल तक थर्राता है॥
रजनीचर जो रह रहे यहाँ—वीभत्स विकट, बेढंगे से।
बाणों की अग्निशिखाओं में—झुलसेंगे स्वयं पतंगे से॥
माँ, आज्ञा नहीं नाथ की है, अन्यथा दास दिखला जाता।
लंका को क्षण में चौपट कर मैं तुमको अभी लिवा जाता॥"

बजरंगी के वचन सुन, हुआ हृदय को चैन।
कुछ क्षण के उपरान्त फिर बोलीं सीता बैन॥

"राक्षस हैं कज्जलगिरि—समान, काले-काले मतवाले से।
तुम मुझे दिखाई देते हो छोटे से, भोले-भाले से॥
क्योंकर उन पर जय पाओगे? सन्देह मुझे यह भारी है।
उद्योग उस समय निष्फल है—जब साधन की लाचारी है॥"

देखा जब बजरंग ने—माँ हो रहीं अधीर।
योगशक्ति से काम ले—विस्तृत किया शरीर॥

गर्जना गगन में गूँज उठी, योजनभर के बलवीर हुए।
संग्राम-भयंकर, विकटानन, भूधराकार, रणवीर हुए॥
फहरा उट्ठी बल की पताक, भहरा उट्ठा शंका सारी।
हहरा उट्ठी राक्षस-सेना, थहरा उट्ठी लंका सारी॥

सीताजी को होगया—पूरा जब विश्वास।
तो फिर छोटे बन गए—सीता पति के दास॥

कर जोड़ कहा—"मन की श्रद्धा अब होठों पर आपहुँची है।
जिस जन के आगे प्रभु न छुपे माता कैसे छुप सकती है?

हे वरदायिनि, हे जगज्जननि यह सब कुछ आप कर रही हैं।
हाथी का नाश कराने को–चींटी में शक्ति भर रही हैं॥
पृथ्वी का भार हटाएँगे'–प्रभु की जब हुई प्रतिज्ञा यह—
तब अपना हरण करा माँ ने कर डाली पूर्ण समस्या यह॥
हम लोग निमित्तमात्र ही हैं, लीला के लिए खिलौने हैं।
आकाश चन्द्र के छूने को, बढ़ते ही जाते बौने हैं॥
इसलिए सिद्ध यह होता है अपनी न तनिक चतुराई है।
यह प्रभु की सब प्रभुताई है, या माँ हो रही सहाई है॥
निश्चर पर दृष्टि नहीं डाली–इस कारण कहाँ शक्ति उसमें।
वह जीते जी है मरा हुआ, है कहाँ विवेक बुद्धि उसमें?
हे शक्तिस्वरूपा, जगदम्बा, हम भिक्षुक उसी दृष्टि के हैं।
जब हमपर कृपादृष्टि है तो भिड़ सकते महाकाल से हैं॥"

डाला यह कहते हुए–उन चरणों में माथ।
तुरत उठाया लाल को–माँ ने हाथों हाथ॥

फिर कृपादृष्टि से अवलोका बोलीं–"देती हूँ शक्ति तुझे।
दी बुद्धि तुझे दी युक्ति तुझे, दी मुक्ति तुझे दी भक्ति तुझे॥
माता का आशीर्वाद यही हो जाओ अजर अमर बेटा!
रघुनाथ तुम्हारे नाथ रहें तुम रहो सदा अनुचर बेटा॥
श्रीरामचरित के पृष्ठों में तेरा भी नाम महान् हुआ।
श्रीरामचरित के साथ-साथ, तू भी प्रसिद्ध हनुमान् हुआ॥
यदि कहीं राम-मन्दिर होगा तो रामदुलारा भी होगा।
सीता-लक्ष्मण के साथ-साथ, यह हनुमत प्यारा भी होगा॥

—ॐ इति ॐ—

संख्या—१४

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है

# • श्रीराम-कथा •

## ( सुन्दर-काण्ड )

लेखक—
नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तनकलानिधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न
पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—
राधेश्याम पुस्तकालय बरेली
उन्हत्तरवाँ संस्करण ] सन् १९८२ [ मूल्य १)

❀ ॐ ❀

# प्रार्थना

नाथ, अब तो निभाए बनेगी ।
बिगड़ी मेरी बनाए बनेगी ॥

चिन्ता से सभी अंग हैं मुरझाए कमल से ।
वह शोक ने घेरा है कि कल है नहीं कल से ॥
यह आगई है ग्रह दशा किस कर्म के फल से ?
गुरुदेव, उबारो मुझे निज पुण्य के बल से ॥
दुःख मेरा मिटाए बनेगी ॥ नाथ० ॥ १ ॥

धन्वन्तरी बन चूर्ण कोई शीघ्र खिलाओ ।
अथवा सुषेण होके सञ्जीवन ही पिलाओ ॥
या जो उचित प्रयत्न हो, वह काम में लाओ ।
गुण गाएगा कृपालु के मरते को जिलाओ ॥
अब न क्षणभर रुलाए बनेगी ॥ नाथ० ॥ २ ॥

दासों को बड़ा कष्ट यह—अन्धेर नहीं है ?
या आप तलक पहुँचती यह टेर नहीं है ?
गिरता है वज्र भाग्य का कुछ फेर नहीं है ?
पृथ्वी पै प्रलय हो रही है, देर नहीं है ?
अब तुम्हीं को सुनाए बनेगी ॥ नाथ० ॥ ३ ॥

संकट उसी पै आए जिसका शुद्ध हृदय हो ।
न्यायेश, करो न्याय तो अन्याय का क्षय हो ॥
जो ले चुका चरण की शरण क्यों उसे भय हो ?
स्वीकार "राधेश्याम" की यह आर्य विनय हो ॥
कष्ट मेरा हटाए बनेगी ॥ नाथ० ॥ ४ ॥

सीताजी से जब मिला हार्दिक आशीर्वाद ।
हनुमत् ने समझा उसे–जीवन लाभ-प्रसाद ॥

श्रीजी के वाक्य नहीं थे वे–अनमोल रत्न थे चुने हुए ।
मन-मानस में ले–कपि उनको–साहस-धन से सौगुने हुए ॥
फिर ऐसे भाव–निमग्न हुए अपना अस्तित्व भुला उट्ठे ।
पा प्रबल शक्ति झूमने लगे, पा विमल भक्ति पुलका उट्ठे ॥

कितने ही क्षण मौन रह, फिर बोले साह्लाद—
"जन्म सफल मेरा हुआ–पाकर आशीर्वाद ॥

हे माता, अब है विनय एक यद्यपि कुछ हृदय हिचकता है ।
फिर भी मुख खोल कहे माँ से-बालक का चित्त मचलता है ॥
आया हूँ सिन्धु लाँघकर मैं इस-कारण भूख सताती है—
यह पेड़ फलों से लदे देख, इच्छा भी बढ़ती जाती है ॥
रखवाली पर जो भाली हैं, उनका किञ्चित भय नहीं मुझे ।
जब कृपा-दृष्टि माँ की है तो सकुचाहट संशय नहीं मुझे ॥

देख बुद्धि बल धाम सुत बोलीं माँ तत्काल ।
"रघुराई को हृदय धर–जाओ मेरे लाल ॥

## ❀ गाना ❀

कपि जाओ, फल खाओ ।
निर्भय हो लौट यहीं आओ ॥
तेरी सब भाँति कुशल हो, मेरा वरदान अटल हो ।
मिले जो फल वह सुफल हो, हाँ मन में हर्ष लाओ ॥
मेरा आशिष है तेरा बाल भी न बाँका हो ।
यह भी अभिलाष है—आतिथ्य तेरे मन का हो ॥
जाओ फल खाउ, विफल विघ्न, सफल इच्छा हो ।
शूल हो, फूल तुझे, शैल तुझे तिनका हो ॥
आग पानी हो तुझे, काल तेरा कौरा हो ।

—:०:—

शीश नवाकर मात की पद-रज लेकर माथ ।
अवधनाथ का ध्यान धर चले मुदित कपिनाथ ॥

जिस डाली पर डाली निगाह वह डाली डाली फिर न रही ।
फल फूल तोड़ सब फेंक दिए लाली हरियाली फिर न रही ॥
हर्षित हो-हो किलकार मार तरु तरु पर धाने लगे बली ।
मीठे-मीठे फल छाँट-छाँट, जी भर-भर खाने लगे बली ॥
फल खाकर तरु उखाड़ते थे, सागर में उन्हें बहाते थे ।
मालीगण सम्मुख आते तो शाखाएँ मार भगाते थे ॥

रखवाले बजरङ्ग की बार-बार खा मार ।
पहुँच दशानन—सभा में करने लगे पुकार ॥

"स्वामी, आया है कीश एक, वाटिका उजाड़ रहा है वह ।
फल खाने की कुछ बात नहीं, पर पेड़ उखाड़ रहा है वह ॥
वानर है नहीं, प्रलय है वह, या यमपुर का हलकारा है ।
विस्मारा है सारा अशोक, राक्षसगण को बस मारा है ॥"

उन सबकी यह टेर सुन, काँप उठा दशभाल ।
"जाउ भगादो कीश को" भेजे भट तत्काल ॥
खलदल आता देखकर उछल पड़े हनुमान् ।
वृक्ष हिलाकर वेग से गर्जे मेघ-समान ॥
सुनते ही शब्द असुर काँपे फट गए युगलपट कर्णों के ।
वजरङ्ग ने रँग वह दिखलाए भदरँग हुए मँह राक्षसों के ॥
कुछ मींज दिए कुछ खूँद दिए कुछ पेड़ गिराकर दबा दिए ।
कुछ पकड़ सिन्धु में फेंक दिए, कुछ बाँध पूछ में घुमा दिए ॥
वजरङ्गी ने रणरङ्गी ने क्षण में रिपु यमपुर पहुँचाए ।
कुछ बचे खुचे, अधमरे असुर फिर राजसभा में चिल्लाए ॥
रावण अति क्रोधित हुआ सुन दूसरी पुकार ।
उसी समय सेना-सहित भेजा अक्षयकुमार ॥
इधर बली वजरङ्ग ने-उड़ती देखी धूर ।
समझ लिया आरहा है अबके कोई शूर ॥
इस बार किया ऐसा गर्जन, काँपा पत्ता-पत्ता वन का !
मारा उखाड़कर वृक्ष एक, मुँह फेर दिया खलनन्दन का ॥
झट तरु से कूद, पकड़ गर्दन झटका दे घोष किया जय का ।
छाती पर एक लात मारी-फट गया कलेजा अक्षय का ॥
वजरङ्ग सिंह की मूर्ति देख बकरी-सा वह मिमिया उट्ठा ।
क्षय हुआ एक क्षण में अक्षय सिर महाकाल मँडरा उट्ठा ॥
तब धाए खलदल पर कपिवर ज्वालामुख आग-बबूले से ।
रिपु लगे बिलोने क्रम-क्रम से पानी के निबल-बगूले से ॥
चुटकी में चुटपुट शत्रु हुए वह महाप्रलय दिखलाई दी ।
कुछ बचे खुचे फिर भाग चले जाकर इस भाँति दुहाई दी ॥

## ❀ गाना ❀

आई शीश पे लड़ाई ! है दुहाई ! है दुहाई !
राजबाड़ी, बागबाड़ी, बानरे ने लूट खाई !
झाड़ के उजाड़ के, बिगाड़ के उखाड़ के—
सारी अशोक-वाटिका का कर दिया है ढेर ॥
अक्षयकुमार मारा है, अन्धेर अन्धेर !
राजदण्ड हो प्रचण्ड, अन्यथा नहीं भलाई ॥

—: ० :—

रावण ने यह टेर सब सुनी तीसरी बार ।
अक्षयसुत की मृत्यु सुन बोला तनिक विचार ॥
"इन्द्रजीत, अब जाउ तुम बानर है बलवन्त ।
वध मत करना बाँधकर लाना यहाँ तुरन्त ॥
देखूँ तो मैं कौन है ऐसा बल-भण्डार—
जिसने मेरे अक्ष को रण में दिया संहार ।
मेघनाद पहुँचा जभी हँसे पवन के लाल ।
ताड़ लिया इस बार है योद्धा एक विशाल ॥
फिर गर्ज गर्ज तरुवर उखाड़, सीधा प्रहार भरपूर किया ।
रथवान सहित घोड़े मारे रथ को भी चकनाचूर किया ॥
सारा दल अङ्गरक्षकों का संहार दिया बजरङ्गी ने ।
फिर इन्द्रजीत के निकट पहुँच जयनाद किया बजरङ्गी ने ॥
हल्का सा मुष्टिक कर प्रहार किलकार उठे तरु पर जाकर ।
उस इन्द्रजीत से योद्धा को मूर्च्छा आई मुक्का खाकर ॥
मूर्च्छा से जग मायावी ने दिखलाया मायाबल सारा ।
बजरंगबली से वश न चला, मिल गया धूलि में छल सारा ॥
उछल रहे थे वृक्ष पर पवन-पुत्र साहाद ।
नीचे से कहने लगा झुँझला कर घननाद ॥

"डाली डाली उछल कर, दिखलाता है चाल ।
बन्दी करता हूँ अभी, अपने लिए सँभाल ॥
मैं मेघनाद कहलाता हूँ, बैरी को सदा हराया है ।
जीता है मैंने स्वर्गलोक, पद इन्द्रजीत का पाया है ॥
पर तू भयभीत न हो मन में बल नहीं तुझे दिखलाऊँगा ।
श्रीमान् पिताजी के सम्मुख केवल तुझे ले जाऊँगा ॥
हनुमत् बोले-"युद्ध कर बातों का क्या काज ?
इन्द्रजालिए, खेल ले इन्द्रजाल सब आज ॥
यदि तुझको कुछ बन पड़े नहीं तो अभी पिता को बुलवाले ।
क्यों खड़ा हुआ मुँह तकता है ? अपने सब कर्तब दिखलाले ॥
तेरा-मेरा रण ही क्या है ? तुझको खेल खिलाता हूँ ।
तू मेघनाद कहलाता है, मैं रामदास कहलाता हूँ ॥
तू इन्द्रजीत बलवाला है, मैं कामजीत बलवाला हूँ ।
तू दीपक है, मैं हूँ मसाल रविकुल-रवि का उजियाला हूँ ॥
बिगड़ उठा यह बात सुन, लंकाधीशकुमार ।
ब्रह्म अस्त्र लेकर कहा-"अच्छा, रोक प्रहार ॥
मुझको तो तुझे बाँधना है, अतएव बाँध ले जाऊँगा ।
सौ दो सौ नहीं सहस्रों ही कर्तब अपने दिखलाऊँगा ॥
तू निश्चय ही है महावीर, तेरा वीरत्व मानता हूँ ।
ले फेंक रहा हूँ ब्रह्मफाँस, इसमें अब तुझे बाँधता हूँ ॥"
कहा अञ्जनीलाल ने-"पूर्ण हुआ संग्राम ।
बन्धन है यह धर्म का, बल का अब क्या काम ?
यह ब्रह्म-अस्त्र, यह ब्रह्मफाँस, यह ब्रह्मवान ब्रह्मा का है ।
मैं इसे काट सकता हूँ पर सम्मान ध्यान ब्रह्मा का है ॥

जिन रामचन्द्र जगदीश्वर को सुर,नर मुनि निशदिन रटते हैं ।
जिनका लेते हीं नाम तुरत सारे भवबन्धन कटते हैं ॥
उनके जन को यह बन्धन क्या ? पर प्रश्न धर्म का है इसमें ।
इतना कहकर बँध गए स्वयं, वृक्षों के डाले छोड़ दिए ।
अतएव नाथ के कार्य हेतु—यह अनुचर बँधता है इसमें ॥"
बँधते-बँधते भी कपिवर ने बीसों के मस्तक तोड़ दिए ॥

लङ्केश्वर की सभा में पहुँचे जभी कपीश ।
क्रोधित होकर उसी क्षण बोल उठा दसशीश ॥
"तू कौन ? कहाँ से आया है ? कुछ अपनी बात बता बनरे ।
उद्यान उजाड़ा क्यों मेरा ? क्या कारण था ? बतला बनरे ॥
लंका के राजा का तूने क्या नाम कान से सुना नहीं ?
तू इतना ढीठ निरंकुश है—मेरे प्रताप से डरा नहीं ॥
मारा है अक्षकुँवर मेरा तो तेरा क्यों न सँहार करूँ ?
तू ही न्यायी बनकर कहदे, तुझसे कैसा व्यवहार करूँ ?"

ब्रह्मफाँस से मुक्त हो, बोले कपि सविवेक—
"उत्तर कैसे एक दूँ जब हैं प्रश्न अनेक ?
दशमुख की प्रश्न-पुस्तिका के पन्ने क्रम-क्रम से लेता हूँ ।
पहला—जो पूछा सर्वप्रथम उसका ही उत्तर देता हूँ ॥
सच्चिदानन्द सर्वदानन्द बल-बुद्धि ज्ञान-सागर हैं जो ।
रघुवंश शिरोमणि राघवेन्द्र, रघुकुल नायक रघुवर हैं जो ॥
जो उत्पति स्थिति प्रलयरूप, पालक-पोषक-संहारक हैं ।
इच्छा पर जिनकी विधि-हरि-हर संसार कार्य-परिचालक हैं ॥
जो दशरथ अजिरविहारी हैं, कहलाते रघुकुल भूषण हैं ।
रीझी थीं जिन पर शूर्पणखा, हारे जिनसे खरदूषण हैं ॥

फिर और ध्यान दे लो, जिनकी सीता को हरकर लाए हो ।
मैं उन्हीं राम का सेवक हूँ, तुम जिनसे वैर बढ़ाए हो ॥
अब सुनिए, लंका आया था माता का पता लगाने को ।
इतने में भूख लगी ऐसी होगया विवश फल खाने को ॥
सुधि तुमने न ली पाहुने की, निश्चर कुल में अभाव है यह ।
फल खाकर पेड़ तोड़ता है, बानर का तो स्वभाव है यह ॥
भगवान् जीम लेते हैं जब—तब भक्त प्रसादी पाते हैं ।
इस कारण भोजन से पहले—निज प्रभु को भोग लगाते हैं ॥
मैंने भी श्रीरामार्पण कर उन वृक्षों के फल खाए हैं ।
तुम उस प्रसाद के पात्र न थे इस कारण तोड़ गिराए हैं ॥
अक्षय-वध का उत्तर है सबको अपना तन प्यारा है ।
उसने जब मुझको मारा तो मैंने भी उसको मारा है ॥

अब मेरी कुछ प्रार्थना, सुनिए देकर ध्यान ।
बिना कहे बनती नहीं, कहना पड़ा निदान ॥

सीता माँ को लंका में रख—तुम भारी भूल कर रहे हो ।
जीवन में अपयश अर्जन कर—बिन आई मृत्यु मर रहे हो ॥
सब पीछे से पछताते हैं जो हैं मदान्ध प्रभुता वाले ।
सन्निकट आरहा प्रलयकाल, सोते हैं क्यों लंका वाले ?
है यही उचित शत्रुता छोड़ लौटाओ सीता माता को ।
श्रीकोशलेन्द्र की छाया में फैलाओ राज प्रतिष्ठा को ॥"

रावण बोला-"व्यर्थ का यह वितान मत तान ।
चोर और बरजोर हो-करता नीति बखान ॥

है धाक धरनि से गगन तलक रचना समस्त मुझ ही में है ।
आज्ञाकारी हैं सूर्य-चन्द्र सब उदय अस्त मुझ ही में है ॥

मेरी त्योरी के चढ़ते ही त्रैलोक्य नाचने लगते हैं।
ग्रह, काल, सुरेश, कुबेर, वरुण मेरे घर पानी भरते हैं॥
आती है बड़ी हँसी मुझको यह ऊटपटाँग बात सुनकर।
उस अधम तपस्वी बच्चे को किस भाँति बखाना चुन-चुनकर॥
ना समझे किस घमण्ड में है ?स्वामी को अपने समझाले।
उस बानरवाले तपसी से—क्या डर जाएँ लङ्कावाले ?"

हुए अञ्जनीलाल के लाल तुरत ही नैन।
भाव दबाकर क्रोध का—बोले ऐसे बैन॥

हनुमान
तूने जो 'अधम' कहा, इससे कब उनकी महिमा घटती है।
कितनी ही फेंको धूल किन्तु सूरज तक नहीं पहुँचती है॥
आगया मृत्यु का दिन समीप, उसने ही तुझे घुमाया है।
कहना सुनना है व्यर्थ सभी, तू तो सचमुच बौराया है॥
मेरा मेरा जो बकता है, यह कुछ भी काम न आएगा।
तब मुट्ठी बाँधे आया था, अब हाथ पसारे जाएगा॥
श्रीरामचन्द्र का दास बना तो देव-वधूटी निरखेंगी।
अन्यथा, मरेगा जब मदान्ध—मक्खियाँ लाश पर भिनकेंगी॥

### * गाना *

अरे दशकन्धर तज अभिमान।
भाई बन्धु कुटुम्ब, कबीला, मित्र, त्रिया सन्तान।
काम नहीं आएगा कोई, जब हों प्राण पयान॥
सेना सम्पति, राज, अटारी, घोड़े, गज रथ, यान।
एक दिवस सब छुट जाएँगे, तू है और मसान॥
और वस्तुओं की क्या कहिए है वे दूर महान।
साथ न जाय यह शरीर भी जिसपर बड़ा गुमान।
खान पान, निद्रा माया में भूला क्यों अज्ञान?
अब तो निज कर्तव्य समझने चाहे जो उत्थान॥
पुण्य पाप ही सँग जाता है रख तू इतना ध्यान।
"राधेश्याम" समझ ले जग में है बस कर्म प्रधान॥

दशकन्धर को विष लगा—यह हितकर उपदेश ।
क्रोधयुक्त होकर दिया इस प्रकार आदेश ॥
"हे राजसभा के सचिववरो, बानर सचमुच उन्मादी है ।
सीधा सादा-सा लगता है, वास्तव में बड़ा विवादी है ॥
निश्चय ही बल पर फूला है उन दोनों तपसी बच्चों के ।
सिर इसका अभी काट डालो सामने मेरी इन आँखों के ॥"
खड्गों को खींच उठे खलगण, चाहा कपि का संहार करें !
भालों की नोकों पै रखलें फिर बाणों की बौछार करें ॥
दैवयोग से आगए तुरत विभीषणराय ।
बोल उठे—"होरहा है यह कैसा अन्याय ?
हे भाई ? कुछ सोचो समझो, सर्वत्र क्षमा है दूतों को ।
ऐसा न करो जग धिक्कारे—लङ्कापति की कर्तूतों को ॥
फिर राजसभा है यह राजन् अन्याय न यहाँ कीजिएगा ।
देना ही है यदि दण्ड इसे तो अवसर देख दीजिएगा ॥
अब तो सब कहने लगे—"यही, यही है न्याय" ।
बोल उठा रावण—"करो तो फिर अन्य उपाय ॥
बे पूँछे पूँछ तुमा कपि ने उद्यान उजाड़ा सारा है ।
अतएव निपूँछा करो इसे, अब यह आदेश हमारा है ॥
घी और तेल से वस्त्र भिगो बँधवाउ पूँछ में बानर की ।
फिर कर प्रचण्ड प्रज्वलित अग्नि लगवाउँ पूँछ में बानर की ॥
जब-जली पूँछ से जाएगा तो स्वामी को भड़काएगा ।
लड़ने के लिए तपसियों को अति शीघ्र यहाँ ले आएगा ॥"
आज्ञा सुन लंकेश की हँसे बली हनुमान—
"यही पूँछ तुझ दुष्ट का हर लेगी अभिमान ॥

शारदा माँ तो कर चुकी काम अब में कुछ कर दिखलाऊँगा ।
तिगनी का नाच नचा इसको, सब इसकी अकड़ भुलाऊँगा ॥"
राजाज्ञा-वश आज्ञाकारी आज्ञा का पालन करते थे ।
घर-घर से आ-अनेक कपड़े उस एक पूँछ पर बँधते थे ॥
लङ्का में अद्भुत कौतुक था,-बूढ़े बच्चे सब हँसते थे ।
जब पवनपुत्र अञ्जनीलाल अपनी यह लीला करते थे ॥
वे वस्त्र लगाते जाते थे यह पूँछ बढ़ाते जाते थे ।
पुर भर के कपड़े लगा दिए, पर छोर न उसका पाते थे ॥
घी तेल काम आया इतना बाकी न बचा छोंकन तक को ।
कपड़े का ऐसा अकाल हुआ बच रहा न जरा कफ़न तक को ॥

बच्चे बूढ़े, तरुण सब बोल विविध विध बोल ।
खिलवाड़े करने लगे-बजा-बजा के ढोल ॥
अन्धों को सूझी नहीं सुख में दुख की लाग ?
नगर घुमा कपि पूँछ में तुरत लगादी आग ॥

बूढ़े बूढ़े जो कहते हैं, आती वह बात यहाँ पर है ।
खाँसी सब रोगों की जड़ है तो हँसी लड़ाई का घर है ॥
श्रीरामचन्द्र की महिमा को लंका के पामर क्या जानें ।
बजरङ्गबली की लीला को मतवाले निशचर क्या जानें ?
रजनी के जाते ही जैसे-हो उचित अरुण मार्तण्ड उठे ।
त्यों आग पूँछ में लगते ही हनुमत हो परम प्रचण्ड उठे ॥

अट्टहास कर दुर्गपर पहुँचे पवनकुमार ।
पृथ्वी से आकाश तक व्यापा शब्द अपार ॥

लंका में बिजली सी चमकी घन सा घननननन घोर हुआ ।
आकार बढ़ा जब आँधी-सा तो 'हा-हा' चारों ओर हुआ ॥

काँपे कच्छप दहले पन्नग, खिसके दिक्पति वह क्रान्ति हुई ।
महिगगन हिले, गिरि धरणि धँसे अतिप्रबल प्रलयसी भ्रान्तिहुई ॥
चल पड़ी हवाएँ 'उनञ्चास' तरु टूट-टूटकर गिरते थे ।
आकाश-धरातल एक हुआ अञ्जनीलाल यों बढ़ते थे ॥

बढ़े हुए आकार में रहे कुछ समय वीर ।
दीर्घकिया फिर पूँछ को लघु कर लिया शरीर ॥

चढ़कर उन कनक कँगूरों को कलशों को ढाने लगे बली ।
फिर एक ठौर पर बैठ गए लाँगूल घुमाने लगे बली ॥
हरि के द्रोही निशचरगण को करनी का स्वाद चखाते थे ।
प्रत्येक दिशा में घूम घूम—जलतों को और जलाते थे ॥"

साँय साँय बढ़ने लगा ज्वाला का विस्तार ।
धाँय धाँय जलने लगा—असुरों का घर द्वार ॥

कोठा में धक-धक आग लगी, नर नारी व्याकुल फिरते थे ।
चेती प्रचण्ड चण्डी ऐसी—गृह खण्ड-खण्ड हो गिरते थे ॥
जब ऊपर को लपटें उट्ठी चलता रथ रुका दिवाकर का ।
सारा त्रिकूट गिरि भवक उठा जल लगा खौलने सागर का ॥
पति को पत्नी, बेटे को माँ, अग्रज को अनुज बुलाते थे ।
लंका नगरी के नर, नारी सब हाहाकार मचाते थे ॥

## ❀ गाना ❀

"चण्डी जगी ! आगी लगी ! हाय ! हाय ! कैसी हुई ।
घर जला ! अटारी जली ! सब जला ! पिटारी जली ॥
मार है ! पुकार है ! अपार चीत्कार है !
मारा हमें, लंकेश का हो जाए सत्यानाश ॥
बाहर जले भीतर भी जले ! धरती जले आकाश !
जानकी न आई, हाय ? जान की घड़ी है आई ?"

—।०:—

हाहाकार निहार यह—गरज उठा दशमाथ ।
होंठ काटकर दाँत से मीजे दोनों हाथ ॥
बलवानों को बलहीन समझ भृकुटी कराल करली अपनी ।
फिर आँख उठाई गगन ओर पुतली विशाल करली अपनी ॥
क्रोधान्वित नेत्र दशानन के जैसे ही ऊपर उठते हैं ।
उडुगण, यम, इन्द्र कुबेर, वरुण, रवि शशि के छक्के छुटते हैं ॥
वह बिजली थी उन आँखों में अम्बर पर घिर आए बादल ।
कड़कड़ सा भीषण शब्द हुआ जल अँधाधुन्ध लाए बादल ॥
संकेतमात्र से काम हुआ, आयोजन हो तो ऐसा हो ।
यदि शासन हो तो ऐसा हो, अनुशासन हो तो ऐसा हो ॥
दुर्दिन में होता नहीं कोई सिद्ध उपाय !
देता है प्रतिकूल फल सीधा भी व्यवसाय ॥
ईश्वर की माया अद्भुत है, होनी का खेल निराला है ।
भगवान् राम ही जब रूठे, तब कौन बचाने वाला है ?
जिस समय अग्नि में जल पहुँचा तो फल विपरीत लगा फलने ।
घी का सा काम किया जल ने, वह आग लगी दूनी जलने ॥
मानो आकाशी झरने से पावक की धार झर रही थी ।
या उधर अशोक-वाटिका में तप्तात्मा काम कर रही थी ॥
बालों को खोले हुए सिया कहती थीं—"लज्जा जाय नहीं ।
ज्वाला मैया मेरे सुत पर देखना आँच कुछ आय नहीं ॥"
यह देख प्रकृति का चमत्कार अञ्जनीलाल हर्षा उठ्ठे ।
हनुमत् को जब हँसते देखा रावण राजा खिसिया उठ्ठे ॥
बोले—"क्या जाता रहा मेरा शासनकाल ?
बन्दीगृह से काल को लाओ अभी निकाल ॥

ओ काल, कहाँ तू बैठा है? कुछ कार्य नहीं कर सकता है।
लंका में आग लग रही है, तू खड़ा-खड़ा मुँह तकता है?
है विपत्काल अतिकाल न कर आ शीघ्र झपटकर बाहर को।
मैं आज्ञा तुझको देता हूँ भक्षण करले इस बानर को॥"
जिस भाँति मदारी के भय से कपि नाना कर्तब करते हैं।
त्यों ही प्रताप से रावण के यम और काल भी डरते हैं॥
अति कुपित देख दशकन्धर को कम्पित सा हो वह काल गया।
फिर प्रलयकाल की भाँति झपट बजरङ्गी पर तत्काल गया॥

कहकर 'जय रघुराज' की बोले अञ्जनीलाल—
"तुझको ही संसार में कहते हैं क्या काल?
तू लोक-जीत, तू भुवन-जीत जगजीत बखाना जाता है।
पर यह शरीर है रामदास जो कालजीत कहलाता है॥
मैं महाकाल हूँ अरे काल, तुझ कराल को विकराल हूँ मैं।
जिसके आधीन है शक्ति तेरी, उस महाशक्ति का लाल हूँ मैं॥"
यह कह झट से झपटे पकड़ा—उस क्रूर काल को क्षण भर में।
ज्यों बालकाल में ले छलाँग था धरा दिवाकर को कर में॥
त्रिभुवन में हाहाकार हुआ, हिल गया इन्द्रपुर ब्रह्मासन।
कैलास-शिखर पर डोलगया—कैलाशनाथ का योगासन॥

❀ गाना ❀

धर, धर, धर, नख, धर, धर धर धर,
धरणि धराधर हुई—नभमण्डल थर॥
धरत, कुबेर, धरणि, सुमेर।
कम्पित सर्व जग धररररररर॥
हनुमत हुई निशाचरमय में—
अनुपम, सुरवन त्रिभुवन में॥
शशि अकुलाए, रवि अकुलाए।
टूटे गिरि—वह धररररररर॥

—: ? :—

इन्द्रादिक सब देवता हो अत्यन्त उदास ।
आए करने प्रार्थना—महावीर के पास ॥
"बजरङ्गबली हो जाउ शान्त सुरगण सब विनय कर रहे हैं।
प्राकृतिक खेल मिट जाएगा, इस कारण देव डर रहे हैं॥
लंका को फूँको क्षार करो, कञ्चन के कोठे तोड़ो तुम ।
पर वीर, हमारे आग्रह से इस समय काल को छोड़ो तुम ॥"
छोड़ दिया हनुमान ने अपने कर से काल ।
देख दशानन ओर फिर–गर्जे आँख निकाल ॥ ॥
इतने में लंका को देखा तो वह अत्यन्त चमकती थी ।
ज्वाला ज्यों बढ़ती जाती थी त्यों कञ्चन ज्योति दमकती थी॥
आँखों में खटका स्वर्ण तेज सोचा परिणाम लपट का है ।
जा पहुँचे तभी सुरंगों में—देखा कोई मुर्दा लटका है॥
नीचे सिर, ऊपर पग उसके सांकल से जकड़ी बाँहें थीं ।
फिर देखा मुर्दा जिन्दा है, धीमी धीमी कुछ आहें थीं॥
कर मुक्त उसे बजरङ्गी ने 'भय तजो और हो शान्त' कहा ।
तब सावधान होकर उसने अपना सारा वृत्तान्त कहा॥
"धन्य आपको आपने जीवन किया प्रदान ।
नाम शनैश्चर दास का सुनिए दयानिधान ॥
मैं अपना फल बतलाने को दशमुख के सम्मुख आया था ।
"आगई साढ़ेसाती तुझपर" यह मैंने उसे बताया था॥
सुनते ही वह तो भवक उठा आँखों को मुझपर लाल किया ।
'पहले तू भोग साढ़ेसाती' यह कह बन्दी तत्काल किया॥
अब तुमने जो उपकार किया उसका है प्रत्युपकार नहीं ।
कुछ सेवा लो आभारी से तो अधिक रहेगा भार नहीं॥

यह सुनकर बोले महावीर-"यदि सचमुच तुम्हीं शनैश्चर हो ।
तो आओ थोड़ा काम करो, जिसका प्रभाव लंका पर हो ॥
इस चमक-दमक की नगरी पर कुछ अपनी दृष्टि फिराओ तुम ।
सचमुच है दशा तुम्हारी तो कञ्चन को लोह बनाओ तुम ॥"

दृष्टि शनैश्चर की पड़ी छाया तिमिर अपार ।
लङ्का काली पड़ गई, गर्जे पवनकुमार ॥

यों उलट-पलट पुर दहन किया मद चूर कर दिया रावण का ।
सम्पूर्ण नगर को फूँक दिया घर छोड़ा एक विभीषण का ॥
सोने की भस्म बनाकर यों कुछ कुछ अलसाने लगे बली ।
कूदे तुरन्त समुद्र-मध्य, निज पूँछ बुझाने लगे बली ॥

पूँछ बुझा श्रम दूर कर ले छोटा आकार ।
पहुँचे माता के निकट फिर श्रीवायुकुमार ॥

बोले-"अब चित उचटता है, अतएव विदा करिएगा माँ ।
फिर हाथ कृपा का इस सर पर चलती बिरियाँ धरिएगा माँ ॥
प्रभु ने जैसे मुँदरी दी थी दें चिन्ह मात भी निज कर से ।
सन्देश कहें जो कहना हो कह दूँगा सब श्री रघुवर से ॥"

इन वचनों से मात को हुआ पूर्ण आह्लाद ।
दिया पुत्र हनुमान् को आशीर्वाद-प्रसाद ॥

बोलीं-"लो मेरी चूड़ामणि, उनके चरणों में रख देना ।
कर जोर ओर से मेरी फिर, इस भाँति निवेदन कर देना ॥
कर्तव्य समझ कर वे अपना मेरा संकट सम्वरण करें ।
जो बाण जयन्ता पर छोड़ा वह कहाँ गया ! फिर ग्रहण करें ॥
यदि एक मास के भीतर ही प्रभु आकर नहीं छुड़ाएँगे ।
तो कह देना जतला देना, फिर मुझे न जीती पाएँगे ॥"

बलवीर, उधर तुम जाते हो, क्या पता इधर क्या होना है।
सान्त्वना मिली थी कुछ तुमसे, फिर वही रात दिन रोना है॥
पर क्या करिए, परवशता है! इस कारण धीर धर रही हूँ।
छाती पर पत्थर-सा रखकर मैं तुमको विदा कर रही हूँ॥"

ढाढस देकर शान्त कर समझाकर बहु भाँत।
विदा हुए आशीस ले—श्री अञ्जनीकुमार॥

चलते चलते ऐसे गर्जे फट गए कलेजे असुरों के।
वह प्रलय मेघ-सा शब्द हुआ गिर गए गर्भ निशचरियों के॥
सुन अट्टहास का विकट शब्द पृथ्वी, पहाड़ तक डोल उठे।
पहचान घोष बजरंगी का इस पार कीशगण बोल उठे—

## ❀ गाना ❀

हनुमत् का आगमन है गगन काँप रहा है।
कपिराज की है गर्जना वन काँप रहा है॥
आकाश में, पाताल में, कैसो दहाड़ है।
वह घोर घोष है कि भुवन काँप रहा है॥
पहुँचा जहाँ पै अन्त वह छक्के छुड़ा दिए।
हिमगज समेत नाग का फन काँप रहा है॥
मर्यादा तजी सिन्धु ने गिरि डोल रहा है।
मुँह घूम घूम—झूम पवन काँप रहा है॥
बजरंग आरहे हैं—जयी होके "रामेश्याम"।
यह वह है जिनके नाम से रन काँप रहा है॥

हलचल यह अवलोक कर वानरदल था दङ्ग।
'जय राघव' कहते—उधर आते थे बजरङ्ग॥

इस पार जभी आए कपिवर, कपिगण में हर्ष अपार हुआ।
सम्मान हुआ, सत्कार हुआ, उपकार हुआ, जयकार हुआ॥

सब उन्हें घेरकर बैठ गए, उनकी लाँगूल चूमते थे ।
सुन-सुनकर लङ्का-दहन कथा हो होकर मग्न झूमते थे ॥
खा मधुवन के मधुर फल, करते हर्षोल्लास ।
"जय राघव" करते हुए आए सब प्रभु पास ॥
एक-एक से हृदय लग मिले मैथिलीकान्त ।
जामवन्त ने वरणि दिया-वन सब वृतान्त ॥
बोले—"हे नाथ, विजय पाई इन श्रीचरणों ही के बल से ।
फल आया है उस बिरवे में सींचा था जिसे कृपा-जल से ॥
सौ योजन का सागर लाँघा, बैरी के घर भी नाम किया ।
जीवन प्रदान कर हम सबको हनुमत् ने पूरा काम किया ॥"
जामवन्त की बात सुन-पुलके करुणागार ।
वीर अञ्जनीलाल से भेंटे भुजा पसार ॥
"हे महाबली, हे महावीर, बल पर तेरे गर्वित हूँ मैं ।
इस कृति के बदले में क्या दूँ ? कुछ वस्तु नहीं लज्जित हूँ मैं ॥
हो सकता नहीं उऋण तुझसे, इस अवसर यहीं कहूँगा मैं ।
जब तक पृथ्वी-आकाश रहे बस तेरा ऋणी रहूँगा मैं ॥
अब यह बतलाओ वैदेही किस भाँति वहाँ पर रहती है ?
कैसे निज जीवन-रक्षा कर, अन्याय असुर का सहती है ?
यह सुनकर हनुमान् ने कहा जोड़कर हाथ—
'सीता माता' की कथा करुण कथा है नाथ ॥
सिंहिनी कटहरे में जैसे, या रसना जैसे दाँतों में ।
वैसे ही हैं वे सतवन्ती उन रजनीचर मदमातों में ॥
या जिस प्रकार हो फणि में मणि हो अथवा कमल-पत्र जल में ।
ऐसे ही रहती मात वहाँ, जिस भाँति चन्द्रिका बादल में ॥

चलने के समय कहा मुझसे–"सब मेरी व्यथा सुना देना ।
छोड़ा जो वाण जयन्ता पर, उसकी भी याद दिला देना ॥
अपराध हुआ है क्या मुझसे ? जो मुझे बिसारे बैठे हैं ।
वे प्रणतपाल कहलाकर क्यों अपना प्रण हारे बैठे हैं ॥
दिन-रात काल के मुख में हूँ पर प्राण न हाय निकलते हैं ।
दर्शन के प्यासे नैना यह—जीवन को रोके रहते हैं ॥
सुधि नहीं महीने भर में ली रघुराई ने आकर मेरी—
तो तन तज आत्मा लोटेगी उन चरणों में जाकर मेरी ॥
चूड़ामणि चलते समय दिया, स्वामी यह चिन्ह लीजिएगा ।
दुखभरी कथा वैदेही की कब तलक कहाँ तक सुनिएगा ?"

यह सुनते ही अधिक फिर विकल हुए रघुवीर ।
क्लेश हुआ अति चित्त को बहा दृगों से नीर ॥

बोले—"हा ! ऐसी पतिव्रता ऐसे सङ्कट के मुख में है !
जिसका मुझसा पति जीवित है वह पत्नी इतनी दुख में है !!
हो कुश काथरी सेज उसकी ! महलों का जीवन जिसका है !
करनी का लिखा नहीं मिटता होनी का खेल निराला है ?"

हनुमत् बोले–"नाथ के हैं अति उच्च विचार ।
पर सेवक की भी विनय, सुनें दया भण्डार ॥

दुख उसको होता है जग में, जो इन चरणों की शरण न हो ।
है उसी ठौर दुख या सङ्कट जिस ठौर प्रभु–स्मरण न हो ॥
माता को दुख सङ्कट कैसा, ? निशदिन वे नाम सुमरती हैं ।
मन-मन्दिर में रघुराई हैं, साक्षात् उन्हीं का करती हैं ॥
है विरहज्वाला का कष्ट जहाँ, अन्तरछवि की नर्मी भी है ।
इस जग का है व्यवहार यही–सर्दी भी है गर्मी भी है ॥

दूसरे, बात कितनी सी है ? रण-भेरी बजने दें स्वामी ।
लंका पर धावा करने को कपि-सेना बढ़ने दें स्वामी ॥"
उठकर राघव ने कहा—"धन्य वीर हनुमान ।
तेरी गति-मति योग्यता हो किस भाँति बखान ॥
तुझसा उपकारी और नहीं सुर, नर मुनि सकल चराचर में ।
बलवीर, हुआ तू अमृत नीर विरही जीवन के तरुवर में ॥
अब और विशेष कहें हम क्या तू अब से प्राण हमारा है ।
श्री भरत-शत्रुहन लक्ष्मण से सीता से बढ़कर प्यारा है ॥"
यह कहते-कहते पुलकित प्रभु नयनों का नीर रोकते थे ।
टकटकी बाँधकर बार-बार हनुमत् की ओर देखते थे ॥
देख अवस्था नाथ की हनुमत् हुए अधीर ।
हूक मार चरणों गिरे—कहकर जय रघुवीर ॥
थी दोनों ओर प्रेम गंगा, कपिदल भी जिसमें न्हाता था ।
स्वामी सेवक का मिलन देख त्रिभुवन-मण्डल पुलकाता था ॥
प्रभु लगे उठाने हनुमत् को, वे हिले नहीं उठना कैसा ?
चरणों में जब गड़ गया चित्त टलना कैसा हटना कैसा ?
शपथ दिला तब भक्त को खींच लिया निज ओर।
आसन दे अपने निकट बोले अवधकिशोर ॥

❀ गाना ❀

बजरंगी प्यारे, गुण पै तुम्हारे बलिहार मैं ।
'सुन कपि तोहि उऋण मैं नाहीं ।
नाम किया उपकार में, क्या दूँगा उपहार में ?
'मांग मांग कपि वर अनकूला' !
तन मन सर्वस वार मैं, कर लूँगा स्वीकार मैं ?

— ० —

इस प्रकार बोले वचन जब प्रभु करुणाऐन ।
उन्हीं स्वरों में कहे तब—हनुमत् ने कुछ बैन ॥

## * गाना *

"महाराज हमारे, शरण तुम्हारे का हूँ दास मैं ।।
'यह सब तव प्रताप रघुराई' ।
पदरज के प्रति श्वास में, रखता हूँ विश्वास मैं ।।
'नाथ, भक्ति तव शिव मन-भावनि' ।
मांग रहा सोल्लास मैं, अनुचर हो, रहूँ पास मैं ।

—: o :—

'एवमस्तु' प्रभु ने कहा—जन-इच्छा अनुकूल ।
बजी गगन में दुन्दुभी, लगे बरसने फूल ।।
मित्र मण्डली में जभी पहुँचे पवनकुमार ।
लिपट लिपटकर कीशगण भेंटे बारम्बार ।।
नल बोला—"सब बात तो यह है, हे हनुमान् ।
दिया सभी साथियों को तुमने जीवन दान ।।
यदि लौट यहाँ आते हम सब सीता माँ की सुधि लिए बिना ।
तो प्राणदण्ड देते सुकण्ठ, होते न शान्त, यह किए बिना ।।
कारण वे प्रथम कह चुके थे, 'असफल होकर यदि आओगे ।
तो पहले से कह रखता हूँ—सब दण्ड मृत्यु का पाओगे ।।"
इसी दृष्टि से फिर यही कहता हूँ हनुमान् ।
दिया सभी साथियों को तुमने जीवन-दान ।।
कहा नील ने—"हमीं पर किया नहीं उपकार ।
हैं सुकण्ठ भी मानते इनका यह आभार ।।
कपिपति को रघुपति से यदि यह अवसर पर नहीं मिला देते ।
तो बालिराज कबका उनको सीधा यमलोक पठा देते ।।
इस कारण मैं यह कहता हूँ, यह दुखी जनों के त्राता हैं ।
कपियों के जीवनदाता हैं, कपिपति के जीवनदाता हैं ।।"

जाम्बुवान बोले—"तनिक इस पर भी दो ध्यान—
उस अशोकवाटिका में बढ़े और हनुमान ॥
यदि ठीक समय पर तरुवर से मुद्रिका गिराते नहीं वहाँ ।
तो उन वैदेही माता को जीवित तक पाते नहीं वहाँ ॥
अतएव सिद्ध हो जाता है—सङ्कटमोचन यह अद्भुत हैं ।
कपि क्या, कपिपति क्या, सीता के जीवनदाता मारुतसुत हैं ॥"

अङ्गद बोले—"किया है प्रभु तक का कल्याण ।
यह कहना तो धृष्टता, दिए उन्हें भी प्राण ॥
पर इतना तो कह देंगे हम—उनका भी कार्य सँभाला है ।
सीता की सुधि लाकर उनके जीवन में जीवन डाला है ॥
निश्चय ही इनमें निज बल है, फिर रामकृपा का भी बल है ।
कर्तव्य-परायण हैं मारुति, करनी करने का कौशल है ॥

## ॐ गाना ॐ

—०—

कठिन है बहुत पर कर्तव्य पालन—
कि है खड्ग की धार—कर्तव्य पालन ॥ १ ॥

अपने अपने स्वार्थ में रत हैं सब अत्यन्त ।
परहित संकट सहे जो वह ही तो है सन्त ॥
सफल जन्म का सार कर्तव्य पालन ॥ २ ॥

अनुभव करता है इसे—यात्री ही भरपूर ।
पग ज्यों-ज्यों आगे बढ़ा प्रियतम त्यों-त्यों दूर ॥
घुमाता लगातार—कर्तव्य पालन ॥ ३ ॥

सोच समझ दृढ़ता सहित बढ़ता जो बलवान ।
प्रभु का प्यारा है वही नेता वही महान ॥
महा—मोक्ष का द्वार—कर्तव्य पालन ॥ ४ ॥

—।०।—

प्रातकाल सुग्रीव से बोले रघुकुलनाथ ।
"रण तो अब अनिवार्य है निशचरगण के साथ ॥
हम आर्यदेश के वासी हैं निज प्रण पूरा करना होगा ;
सीतोद्धार के साथ साथ सब भूमि भार हरना होगा ॥
हे बलवीरो, हे रणवीरो, पग आगे ही धरना होगा ।
सत्यता न्याय मर्यादा पर कटना होगा, मरना होगा ॥"
रामाज्ञा सुन चतुर्दिश गरज उठे बलवन्त ।
एकत्रित सुग्रीव ने कपिदल किया अनन्त ॥
है बात न यहाँ करोड़ों की गिनती अरबों-खरबों की है ।
लहरावलि-सी टीढ़ीदल-सी सेना भालू वानरों की है ॥
थे अति प्रचण्ड दुर्दण्ड सुभट जीवटवाले जीदार सभी ।
गम्भीर सभी रणधीर सभी बलवीर भूधराकार सभी ॥
किलकार मारकर कीशकटक सागर के तट पर जाता था ।
आकाश धूल-धूमरित हुआ दिनकर न दृष्टि में आता था ॥
मुखरित हो उठा मेदिनी-तल खलदल में खलबल हलचल है ।
जयकार विश्व में गूँज गया, हर्षायमान सुरमण्डल है ॥
घर में आजाय एक बानर तो घर वाले घबराते हैं ।
लङ्का में कैसी बीतेगी, जब इतने बढ़कर जाते हैं ?

❀ गाना ❀

—※ ० ※—

कपिदल जा ठहरा सागर पर, सागर सम जिसका विस्तार ।
शकुन हुए सीता माता को, अशकुन लंका के राजा को ॥
शंका थी राक्षस सेना को सुन सुनकर हुँकार ॥ १ ॥
खाशामृग थे शाखाओं पर, धरणी पर श्री धरणीधर ।
"राधेश्याम" न स्वामी ऐसे देखे कहीं उदार ॥ २ ॥

—०—

❀ इति ❀

ॐ

# • श्रीराम-कथा •

संख्या—१५

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है।

( सुन्दर-काण्ड )

लेखक—

नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त-
कीर्तनकलानिधि, काव्यकलाभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न—

पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—

उन्हत्तरवाँ संस्करण ] सन् १९८२ [ मूल्य १)

❀ ॐ ❀

# प्रार्थना

ऐसी कृपा हो शंकर, जब प्राण तन से निकले—
शिव-शिव ही हो जुबां पर, जब प्राण तन से निकले ॥
भागीरथी का तट हो, तरु बिल्व का निकट हो ।
रजनी रहे पहर भर, जब प्राण तन से निकले ॥
अँजुली में गंगाजल हो, जिह्वा पे तुलसीदल हो ।
हर श्वास में हो हर-हर, जब प्राण तन से निकले ॥
व्रत की त्रयोदशी हो, फिर चन्द्रवार भी हो ।
हो सूर्य अयन उत्तर—जब प्राण तन से निकले ॥
आंचल को जब पकड़ लूं—तब तीन हिचकियां लूं ।
गोदी में गिर पड़े सर, जब प्राण तन से निकले ॥
परिणाम यदि यही हो—तो मृत्यु सुखमयी हो ।
यश आपका हो प्रभुवर, जब प्राण तन से निकले ॥
'जब तन तजा पतित ने, पावन किया था 'शिव ने' ।
चर्चा यही हो घर-घर, जब प्राण तन से निकले ॥
है "राधेश्याम" अनुचर, बेहतर है या है बदतर ।
मारा फिरे न दर-दर, जब प्राण तन से निकले ॥

ॐ

# कथा प्रारम्भ

सागर तट–कपिदल-सहित ठहरे सीताकान्त ।
अब जो कुछ बीता उधर–सुनिए वह वृत्तान्त ॥
जिस दिन से लंकानगर जला गए बजरंग ।
हुए राक्षसदलों के रंग पूर्ण बदरंग ॥
महारानी मन्दोदरी—हो अत्यन्त उदास—
रो उट्ठी एकान्त में–पति-चरणों के पास ॥

"हे प्राणनाथ, हे प्रजानाथ, हे भूमण्डल के भूप प्रभो ।
मेरी आँखों में घूम रहा–अब घोर प्रलय का रूप, प्रभो ॥
हनुमत् से जिनके पायक हैं, वे कैसे मारे जायेंगे ?
तुम लड़के जिन्हें समझते हो–वे लड़के तुम्हें हरायेंगे ॥
"कुसमय में सन्धि उचित ही है'–यह कथन प्रवीण नृपों का है ।
औरों को ले खुद भी डूबें, यह मार्ग महामूर्खों का है ॥
वह कार्य सदा ही अच्छा है–जो मेल और मिल्लत में हो ।
आगे तो वह ही होता है लिक्खा जो कुछ किस्मत में हो ॥
लंका यह अपनी बनी रहे क्या काम हमें फिर झगड़ों से ।
बस यही जीत है, यही विजय, करिएगा सुलह तपस्वियों से ॥"

सुनकर रानी के वचन, बोला तड़प मुरारि ।
"रहने दे उपदेश यह–ओ कम हिम्मत नारि !!

वह शूर नहीं, वह कायर है—जो रण में डटकर हट जाएँ।
वह मर्द नहीं, नामर्द है—जो कहकर बात पलट जाएँ॥
गङ्गाजल उल्टी तरफ बहे या पश्चिम से सूरज निकले।
हो सकता नहीं कभी भी यह—लङ्का का नाथ राय बदले॥
जिसके माँझी नौसिखिए हैं—वह बेड़ा औघटघाट सदा।
जिसने सलाह ली ओछों से—उसका घर बारहबाट सदा॥
उस बानर वाले तपसी से क्या मेरी प्रभुताई कम है?
दूँगा न कदापि जानकी को, जबतक मेरे दम में दम है॥

## * गाना *

—०—

मैं हूँ आनवाला, मैं हूँ बानवाला—बड़ा ज्ञानवाला, बड़ी—
शानवाला! चुप अनारी नारी, मतवारी गँवारी वाला॥

यह आतुरी, यह चातुरी, न कायरी जता।
गुणागरी, उजागरी, दिलावरी सुना॥

जा, जा, जा, जा, आँख से ओट होजा।
अति वीर हूँ मैं, रणधीर हूँ मैं, गम्भीर हूँ मैं—आला॥"

—०—

उधर उसी दिन जुड़ गया एक बड़ा दर्बार।
राजमन्त्रियों में किया उसने प्रकट विचार—
"लङ्का के वीरो, रणधीरों, बोलो क्या राय तुम्हारी है?
बैरी सागर के पार खड़ा करता अपनी तैयारी है॥
हे सहायको, सेनापतियों, संगठित भली विधि हो जाओ।
जिस तरह शत्रुदल हो परास्त, बस उसी मार्ग को अपनाओ॥"
दर्बारी कहने लगे—"कौन बड़ी यह बात?
मृगराजों के सामने, मृग की कहाँ बिसात?

दो बालक हैं ! छोटे-छोटे, कुछ भलुए हैं कुछ बनरे हैं ।
हम लंकावालों के आगे—सब भुनके हैं, सब मछरे हैं ॥
अपने जो चने-चबेने हैं उनका सोचें उपाय ही क्या ?
राजाधिराज आनन्द करें इस रण में भला राय ही क्या ?"

कहा विभीषण ने तभी—"हाक ! अनर्थ ! अकाज !
इस मुँहदेखी बात ने-गिरा दिया है राज ॥
निश्चय यह विष की बूँदें हैं-जो मीठी मीठ बतियाँ हैं ।
यह 'जीहाँ' 'जीहाँ' की रायें कागज की तीर कमनियाँ हैं ॥
कहते हैं ठकुरसुहाती जो-ठाकुर का दिल, खुश करने को ।
भगवान् उन्हें करदे समाप्त, वह सब जीते हैं मरने को ॥
पुरुषों में जो पुरुषोत्तम हैं—बालक उनको ठहराया है ।
रणधीर वीर वानरदल को—भुनगा, मच्छर बतलाया है ॥
इस मति पर पत्थर पड़ जाएँ, इस मुँह पर बिजली टूट पड़े ।
वह राज सुरक्षित हो कैसे, जिसके सचिवों में फूट पड़े ?

भाई, धीरज धर-सुनो, अब कुछ मेरी बात ।
ऐसे चिकने मत बनो-ज्यों कदली के पात ॥
तुम पण्डित हो, तुम शासक हो, तुम राजाओं के राजा हो ।
शोभायमान है तुम्हें वही-जो नीति, धर्म मर्यादा हो ॥
अपने ही हाथों पैरों में जब आप कुल्हाड़ी मारी है ।
तो अब लकड़ी की खड्गों से-रण की किसलिए तयारी है ?
खुद ही सीता को हर लाए, खुद ही यह वैर बढ़ाया है ।
खुद ही भारत को छेड़ा है, वह सोता सिंह जगाया है ॥
तुम उनमे नहीं काल ही मे इस समय जूझते हो भाई ।
पहले तो कूदे ज्वाला में—अब राय पूछते हो भाई ॥

जो कुछ कर चुके—करचुके तुम, अब सोच-समझकर पाँव धरो ।
जो चली गई वह चली गई, जो रही उसी की बात करो ॥
जड़ से ही रार मिटादो यह अर्पण कर उनकी सीता को ।
रघुकुलपति से मित्रता बढ़ा—बलवान बनाओ लंका को ॥
शक्तिरूप हैं जानकी, जगदम्बा जग मात ।
उन्हें त्रास दे अन्त है—कुशल नहीं है भ्रात ॥

❀ गाना ❀

—:०:—

"उमरिया सिरानी तजत न गुमानी !
धन—मद कीनों तज के चतुरिया' जगत् में अपयश लीना ॥
हित के उचित कटु लगत हे बैना, मधुर मधुर सुन पड़त चैना ।
"राधेश्याम" यह दानी सुनत न गुमानी ॥ उमरिया० ॥"

—०—

भाई की यह राय सुन बिगड़ उठा दशशीस ।
अरूण वरण लोचन हुए, फड़क उठीं भुजबीस ॥
बोला—"बस मौन विभीषण हो अनुचित है दण्ड सहोदर को ।
इस समय और होता कोई तो अभी काट देता सर को ॥
दुश्मन के आगे सर झुकाय ! यह रावण का दस्तूर नहीं ।
मर जाना है मंजूर मगर-सीता देना मंजूर नहीं ।
घरवाला होकर घर ही को, अपमानित करा रहा है तू ।
आवरू छत्र सिंहासन की, मट्टी में मिला रहा है तू ॥
हे कुलद्रोही, कायर कुबुद्धि, ओझल हो मेरी आखों से ।
उनको ही नीति सुना अपनी, जा-मिलजा तपमी बच्चों से ॥
क्या काम इस जगह है उसका, जिसने बैरी से प्यार किया ?"
यह कहकर भ्रात विभीषण पर रावण ने चरण-प्रहार किया ॥

पकड़ विभीषण ने चरण, कहा–'लो नमस्कार ।
देश निकाला भी मुझे, है सहर्ष स्वीकार ॥
भाई ! जबतक भाई, भाई, भरपूर निभाई सेवा है ।
अब लात लगाई भाई ने—यह भी भाई की इच्छा है ॥
विष और अमृत दोनों पदार्थ—यद्यपि समुद्र से निकले हैं ।
पर उसमें तत्व मरण के हैं—इसमें जीवन देने के हैं ॥
होनी जब सर पर आती है तो औंधी ही मति होती है ।
तुम भटका करो कङ्कड़ों में मैंने तो पाया मोती है ॥
अपराध क्षमा करना उसके जी होकर आज कठोर चला ।
लङ्का हो तुम्हें मुबारक–मैं श्रीरामचरण की ओर चला ॥

## ❀ गाना ❀

हाय ! भाई मेरे, मेरी तूने तनिक नहीं मानी ।
जो वतन से निकले हैं हो गद-तो वहां भी किस्मत साथ है !
जो छुटा है धन परिवार सब तो निबाह राम के हाथ है !
मैंने की थी भलाई–बुराई मिली नागहानी ॥
जो कफ़स से बुलबुल उड़चली—तो यह बोली बादे बहार—
'न गरूर में इतरा के चल, जरा डर खिजाँ के बुखार से' ।
रही किसकी हमेशा ? दुनियां है आनी जानी ॥
जो कली थी कल–वह है आज गल, खिला देखो क्या गुलज़ार है ।
यूँ ही खिलखिला के हो कल को,गुल, न तो बाग़ है न बहार है ॥
बने नाहक गुमानी, कायम नहीं जिन्दगानी ।
जो वचन हैं "राधेश्याम" यह—नहीं इनमें कुछ भी भूल है ।
'शुभ योजना में—देर करना—मूर्खता है, भूल है ।
करूं राघव के दर्शन मैंने यह मन में ठानी ॥'

—: ० :—

चले विभीषण इस तरह–तजकर घर-परिवार ।
मन में विविध प्रकार के करते हुए विचार ॥

"मुनि मन-मधुकर-कञ्ज जो, निर्मल ललित ललाम।
निरखूँगा अब प्रेम से—वही चरण छविधाम॥

विनती

जिन चरणों का शिवसनकादिक सुर नर मुनि ध्यान लगाते हैं।
जिन चरणों की लीला महिमा–नारद-शारद नित गाते हैं॥
जिन चरणों से कलिमल-नाशक-निकली गङ्गा की धारा है।
गौतम की नारि अहिल्या को–जिन चरणों ने निस्तारा है॥
जिन चरणों की अंजनीलाल–आदर से देखा करते हैं।
जिन चरणों की पादुका भरत–श्रद्धा से पूजा करते हैं॥
अब वह शुभ घड़ी आ रही है–निरखूँगा उन चरणों को मैं।
सौभाग्य–सूर्य हो रहा उदय, चूमूँगा उन चरणों को मैं॥

ऐ दिल घबराहट न ला, हसरत हो बेदार।
बेअदबी कुछ हो नहीं शौक़ बस खबर्दार॥"

निर्भीकता

इतने में यह ख़याल आया–सम्भव है शरण न दें राघव।
दुश्मन का भाई समझ मुझे नज़रों को फेर न लें राघव॥"
फिर सोचा-"यह कुछ बात नहीं क्या काम यहाँ इन झगड़ों का?
राघव से मुझे प्रयोजन क्या? मैं तो सेवक हूँ चरणों का॥
उन चरणों की है आश मुझे उन चरणों को मैं पकड़ूँगा।
राघव पर दृष्टि उठेगी फिर—पहले चरणों को देखूँगा॥
यदि चरण निभायेंगे न मुझे तो प्रभु से विनय करूँगा मैं।
प्रभु ने यदि त्याग दिया तो फिर–चरणों की ओट गहूँगा मैं॥
दोनों ही यदि जाएँगे तो भी क्या मैं फिर जाऊँगा?
चरणों ही की सौगन्द मुझे चरणों पर भस्म रमाऊँगा॥
जोगी बनकर–माला लेकर, वन-वन में अलख जगाऊँगा।
चरणों से ध्यान लगा कर ही, रघुनायक के गुण गाऊँगा॥

## ❀ गाना ❀

—०—

जाऊँ जाऊँ राम चरण-शरण में जाऊँ ।
प्रभु को ध्याऊँ, सेवकाई पाऊँ ॥
धाऊँ धाऊँ खुशी से, राजी से, तेजी से धाऊँ ।
जोड़ूँ कर को । नाऊँ सर को ॥
त्यागूँ डर को । माँगूँ वर को ।
गति जानते दयालु तन-मन-धन की ।
मुझे चिन्ता न लज्जा है—राजापन की ।
चित चढ़ रहो छवि-रघुनन्दन की ॥
बड़ी आशा है इच्छा है दर्शन की ।
घड़ी घड़ी अब है भारी, चल चल दरस भिखारी ।
"राधेश्याम" खरारी रक्खे लाज हमारी ॥
गाऊँ ! गाऊँ ! हरि के गणों के—
गुणों के—गानों को—गाऊँ ॥"

—:०:—

**अपनी तामस देह पर, फिर कुछ आई ग्लानि ।**
**फिर सोचा—"उनके निकट जाने में क्या हानि ?**

## ❀ गाना ❀

मनुआँ, धीरज, धार—प्रभु चरणों में चलिए ।
तजकर विविध विचार—प्रभु चरणों में चलिए ॥
पुत्र, कलत्र, बहन और भ्राता, जिन पर तू रहता मदमाता ।
दो दिन का उनका है नाता, सब मतलब के यार ॥
प्रभु-चरणों में चलिए ॥
जग-जीवन है खेल तमाशा, क्षण में तोला, क्षण में माशा ।
पानी का सा एक बताशा होजा इससे पार—
प्रभु—चरणों में चलिए ।

—: ? :—

दिन या रात, धूप या छाया, धरती गगन प्राण या काया ।
जिन प्रभु की है यह सब माया, कर उनसे ही प्यार ॥
प्रभु—चरणों में चलिए ॥
"राधेश्याम" यही है जीवन यही जीव का अन्तिम साधन—
हो आनन्दकन्द का दर्शन, मिले शान्ति भण्डार—
प्रभु—चरणों में चलिए ॥

—❀०❀—

अस्तु, अनेक प्रकार से करते हुए विचार !
भक्त विभीषण शीघ्र ही—आए सागर पार ॥
दृष्टि वानरों की पड़ी—जब इन पर तत्काल ।
गए पास सुग्रीव के—और कहा यह हाल ॥

सुग्रीव

सुग्रीव रामजी से बोले—"कुछ नया स्वाँग है गढ़ा हुआ !
वैरी का भ्राता आता है, गम्भीर भेद है छुपा हुआ ॥
रजनीचर सब मायावी हैं, सीधा न समझिएगा इनको ।
उत्तर का मार्ग बताते हैं जब जाते हैं यह दक्खिन को ॥
मेरा विचार तो ऐसा है—सब स्वाद चखादूँ इसको मैं ।
बँधवाकर अभी वानरों से—बन्दी करवादूँ इसको मैं ॥
भाई को बन्दी समझ यहाँ—घबराकर आएगा रावण ।
सीता माँ को दे जाएगा—इसको ले जाएगा रावण ॥"
जामवन्त कहने लगे—"धीरज धरिए तात ।
अपने को शोभित नहीं—ऐसी ओछी बात ॥
जो धर्ममान् हैं, योद्धा हैं—रण में कर्तव्य चुकाते हैं ।
वैरी से कहकर-बतलाकर-यमपुर उसको पहुँचाते हैं ॥
आरहा भेद लेने को यदि तो भी हमको कुछ फ़िक्र नहीं ।
कुछ यहाँ भेद की नीति नहीं, कुछ यहाँ कपट का जिक्र नहीं ॥

धोखे से लड़ने आया हो तो भी न बात चिन्ता की है।
श्रीलक्ष्मण जी का एक बाण–उसके संहार को काफी है॥
फिर क्यों छेड़ें बानर उसको सम्भव है मिलने आया हो ?
हो सकता है वह साथ–साथ सन्देश सन्धि का लाया हो॥
अथवा रावण का क्षमापात्र–वह पास हमारे लाता हो।
या रावण से कुछ बिगड़ गई–शरणार्थी होकर आता हो॥"

'शरणार्थी' की बात सुन बोल उठे रघुनाथ—
"सादर शिष्टाचार से, आउ लिवाकर साथ॥
जो निर्मल है, जो निश्चल है, वह ही जन मुझको पाता है।
चालाक प्रपञ्ची, धूर्त छली—कब मेरे सम्मुख आता है॥
यदि सभीत शरणागत होगा, दामन से उसे ढकूँगा मैं।
फिर महापातकी भी हो तो–उसको न कदापि तजूँगा मैं॥
मैं उसका सच्चा साथी हूँ—जो सब प्रकार से आरत है।
मैं उसका सच्चा साथी हूँ—जो जन मेरा शरणागत है॥
यदि शरण आरहा है मेरी—तो अपना कर रक्खूँगा मैं।
अपने समीप बिठलाऊँगा—लक्ष्मण जैसा समझूँगा मैं॥

❀ गाना ❀

सुनो भाई, शरणागत आरत को जो सताए—
इस जग में—जीवन में सुख वह कभी न पाए॥
शरणागत के त्याग से होती आत्मिक ग्लानि।
इस कारण त्यागो नहीं, चाहे कुछ हो हानि॥
अन, धन, भूषण, तन, मन जीवन जाए तो जाए।
पर, भाई, शरणागत के चित्त को न दुखाए॥"

—।०।—

शरणागत पर प्रीति लख पुलकि उठे हनुमन्त।
स्वामि स्वभाव विलोककर बोले वचन तुरन्त॥

"जय शरणागत-वत्सल रमेश, जय आरतहरणनमामि हरे ।
जय भानुवंश अवतंस हंस, जय अशरण शरण नमामि हरे ॥
हे नाथ ! आजतक याद मुझे, परिचित में खूब विभीषण से ।
वह प्रेमी है, अनुरागी है, आया दर्शन के कारण से ॥
निश्चय शरणागत है प्रभु की, कुछ सेवा काज चाहता है ॥
फिर इस आशा से भी आया--लंका का राज चाहता है ॥
हम सभी उसे ले आते हैं वह साथ हमारे आएगा ।
अपना तो महालाभ ही है--घर का भेदी मिल जाएगा ॥"

पवनतनय के वचन सुन, मुस्काए भगवान् ।
"जय कृपालु"--कहकर चले अङ्गदादि हनुमान् ॥

घर में, वन में रिपुगण में भी--भय नहीं कहीं कुलभूषण को ।
स्वागत-सम्मान पूर्वक सब ले आए भक्त विभीषण को ॥
पहले तो लखा दूर ही से चारों ही ओर कीशगण को ।
तिर्छी चितवन से ताड़ लिया वीरासन बैठे लक्ष्मण को ॥
फिर नीची नज़रों से देखा--कोशलकिशोर के चरणों को ।
एड़ी तलवों को, पञ्जों को उँगलियों, नखों, रेखाओं को ॥
फिर आँख उठाकर कुछ ऊपर देखा उस कदली जंघा को ।
फिर वक्षस्थल, आजानुबाहु फिर जटाजूट, फिर ग्रीवा को ॥
फिर एक दृष्टि गहरी डाली--भरपूर जमाया आँखों को ।
प्रति अंग-अंग प्रति रोम-रोम--देखा अगणित ब्रह्माण्डों को ॥
फिर कुछ आगे बढ़कर देखा--राजीवनयन की चितवन को ।
टकटकी बाँधकर फिर देखा--श्रीरामचन्द्र चद्रानन को ॥
फिर समीप जाकर हूक मार गद्गद् पुलकायमान तन से ।
कर जोड़ सामने खड़ा हुआ--बोला श्रीरघुकुलनन्दन से ॥

## ❀ गाना ❀

नमाम्यच्युतं सच्चिदानन्दमाद्यं—
विपद्भञ्जनं व्यक्तमव्यरूपम् ।
मुराधीश—नीलाभ्रनीलांग—कान्ति—
रामाकान्तमिन्द्रादिसेव्यं वरेण्यम् ॥ १ ॥
अजं शाश्वतं शान्तरूपं विशुद्धं ।
महा चापहस्तं विभुं राघवेन्द्रं ।
नराकारदेहं लसद्पद्मनेत्रं—
सुरानीक दुखौघ शंकहेतुम् ॥ २ ॥
खरारि निरीहं जटाजूटशोभं—
सदा सर्वगं सर्वलोकैकनाथम् ।
प्रसन्नाखिलानन्ददोह भजेऽहं—
गुणाढ्यं विदेहात्मजानन्दरूपम् ॥ ३ ॥
अहं मूढबुद्धिस्त्वदीयं स्वरूपं—
न जानामि योगीशध्यानाभिगम्यम् ।
इदानी प्रभो ! रक्ष मां सर्वतस्त्वं—
ममातायदं सं नुदासं स्वकीयम् ॥ ४ ॥"

—: ० :—

विनती कर प्रभुचरण में डाल दिया निज माथ—
'शरणागत की लाज अब रखलें रघुकुलनाथ !"

अचरज में वानर-भालु हुए—जब देखी दशा विभीषण की ।
पुलका उठे श्रीरामचन्द्र, हुचकी भर आई लक्ष्मण की ॥
गद्गद थे हनुमत् जामवन्त कपिपति को कुछ लज्जा आई ।
अपने हाथों पर उठा उसे—लिपटे सहर्ष श्रीरघुराई ॥

यथायोग्य भेंटे सभी—भालु-कीश-समुदाय ।
फिर आसन दे पास में बोले श्रीरघुराय—
"कहिए लंकेश ! कुशल से हैं ? घर में भी सब प्रसन्नता है ।
बतलायँ मुझे मैं प्रस्तुत हूँ, क्या इच्छा है ? क्या आज्ञा है ?

तुम ज्ञानवान् सज्जन होकर लंका में कैसे रहते हो ?
किस भाँति धर्म की रक्षा कर, अत्याचारों को सहते हो ?
कहता हूँ सखा भाव से मैं, सब हाल कहो अपने मन का ।
मेरा स्वभाव ही ऐसा है, सच्चा साथी हूँ सज्जन का ॥
जो सच्चा है, समदर्शी है, वह मुझे प्राण से प्यारा है ।
वह ही मुझसे मिल सकता है जिसने अपनापन मारा है ॥"

मधुर वचन सुन राम के हुआ पूर्ण आनन्द ।
भक्त विभीषण ने कहा—"सुनिए रघुकुलचन्द ॥

विभी[illegible]
वह दास सदा बड़भागी है—जो प्रभु पद का अनुगामी हो ।
वह जन निष्कण्टक-निर्भय है, जिसका रघुकुल सा स्वामी हो ॥
मद मोह काम या क्रोध लोभ, उस समय हृदय से हटते हैं ।
जब रघुराई ले धनुषबाण—भक्तों के चित में बसते हैं ॥
माया में फँसा हुआ प्राणी—तब तक—पाता विश्राम नहीं ।
जब तक निष्काम शुद्ध मन से, मुख से कहता श्रीराम नहीं ॥
जो बात कान से सुनता था, वह आज आँख से देखी है ।
होती है वहीं प्रताप-बुद्धि-मर्यादा जहाँ धर्म की है ॥
निशचरकुल में पैदा होकर अब तलक बहुत भरमाया हूँ ।
रघुनायक, मेरी बाँह गहो, मैं शरण आपकी आया हूँ ॥

नरपुङ्गव, नरकेसरी, नरनायक, नरनाह ।
आज विभीषण दीन है प्रभु के हाथ निबाह ॥

धन-धाम छुटा परिवार छुटा इसकी न मुझे कुछ चिन्ता है ।
कुल ध्यान बीच में और हुआ उसकी भी अब न लालसा है ॥
अब तो जन यही चाहता है जन गणनायक के पास रहे ।
इन चरणों ही में पड़ा रहे, इन चरणों ही का दास रहे ॥"

## ❀ गाना ❀

जब सुनी विभीषण की यह आरत बानी—
कह 'एवमस्तु' उठ बैठे शारंगपानी ॥

समझी जब सच्ची प्रीति सुजन की ।
देखी जब सुस्थिर दशा भक्त के मन की ॥
बोले—"यद्यपि तुम्हें न इच्छा धन की ।
चाहिए भेंट फिर भी तो प्रेम मिलन की !"
यह कहकर—मँगवाया समुद्र का पानी ।
कह 'एवमस्तु' उठ बैठे शारंगपानी ॥ १ ॥

बहुमूल्य वस्तु समझी जो दशकन्धर ने ।
जिस हेतु चढ़ाए शीश काट निश्वर ने ॥
वह ही लंका जो उसको दी शंकर ने ।
दी सकुच विभीषण को क्षण में रघुवर ने ॥
होते ही 'टीका' जब बोले सेनानी ।
कह 'एवमस्तु' उठ बैठे शारंगपानी ॥ २ ॥

रण के पहले हो यह शुभ अवसर आया ।
रिपु के भ्राता ने जीवन धन्य बनाया ॥
सुरमन्डल ने भी पुष्पों को बरसाया ।
ऋषियों महर्षियों ने आनन्द मनाया ॥
अति दीन विभीषण, धन्य राम से दानी ।
कह 'एवमस्तु' उठ बैठे शारंगपानी ॥ ३ ॥

जो प्रेमभाव से प्रभु को अपनाएगा ।
वह निश्चय निस्सन्देह उन्हें पाएगा ॥
शरणागति जगपति का अब हो जाएगा ।
जग का वैभव पीछे-पीछे आएगा ॥
यह लीला "राधेश्याम" जानते ज्ञानी ।
कह 'एवमस्तु' उठ बैठे शारंगपानी ॥ ४ ॥

—: o :—

अब आगे जैसा हुआ—सुनिए वह धर ध्यान ।
कपिपति से, लङ्केश से बोले कृपानिधान ॥
"हे किष्किन्धापति, लङ्कापति, बतलाओ अब क्या करना है ?
उस निश्चरपति दशकन्धर से—किस भाँति लड़ाई लड़ना है ?
इस सौ योजन के सागर को किस तरह पार कर सकते हैं ?
क्या किसी प्रकार, किसी विधि से, हम पुल तैयार कर सकते हैं ?"
प्रथम विभीषण ने कहा—"सुनिए करुणागार ।
सदा धर्म की जय रहे, होगा बेड़ा पार ॥
वानर-सेना जब अगणित है तो चिन्ता ही क्या पुल की है ।
उद्योगी—वीरों को जग में कठिनाई नहीं कहीं भी है ॥
सङ्कोच यही है सागर यह अत्यन्त पूज्य है रघुकुल का ।
इसलिए विनीत भाव ही से माँगिए मार्ग इससे पुल का ॥"
लषणलाल क्रोधित हुए सुनकर ऐसी राय ।
शीश नवा बोले तुरत, वे छोटे रघुराय ॥
"जो कार्य शीघ्र ही करना है, होगा न विनय ही बातों से ।
घी नहीं निकलता भाई जी, सीधी या खड़ी उँगलियों से ॥
चढ़ जाय धनुष पर बाण अभी तो उसका गर्व हरण होगा ।
फिर सागर या कि महासागर, आरत हो चरण-शरण होगा ॥"
"शान्त ! शान्त ! हो अनुजवर "बोले श्रीरघुवीर ।
"ऐसा ही होगा मगर—धरे रहो कुछ धीर ॥"
इतना कहकर सिन्धुतट बैठे विनय निमित्त ।
सुनिए अब पिछली कथा—सावधान कर चित्त ॥
लङ्का से चल रामादल में जिस समय विभीषण आए थे ।
पीछे से भेद जानने को—रावण ने दूत पठाए थे ॥

वानराकार में शुक-सारण, इस समय घूमते फिरते थे।
श्रीराम-विभीषण मिलन देख-सानन्द झूमते फिरते थे॥
व्यवहार यहाँ का देख-देख यह दोनों भी जब भक्त हुए।
घर की, तन की सुधि भूल गए, उन्मत्त हुए, अनुरक्त हुए॥
हो गए प्रकट खुल गया कपट, कपियों ने चट पहचान लिया।
झटके दे-दे महि पर पटका, जब गुप्त दूत अनुमान लिया॥
"नाक-कान काटो अभी" बोले कपि दो तीन।
"राम-लषण" की दे उठे-तभी दुहाई दीन॥
श्रीलषणलाल के कान पड़ा, वह करूणा-क्रन्दन दूतों का।
बुलवाकर अपने पास वहीं-खुलवाया बन्धन दूतों का॥
पहले तो समाचार पूछा, फिर दोनों को स्वतन्त्रता दी।
फिर थोड़ा-सा कुछ सोच समझ-रावण के नाम पत्रिका दी॥
"ले जाउ हमारी चिट्ठी यह-दशकन्धर को दिखला देना।
फिर कुछ सन्देश जुबानी भी-अभिमानी को समझा देना!!
नास्तिकता, चोरी-कलह, नशा और पर-नारि।
कहना-यह वस्तुएँ हैं वंश विनाशनहारि॥
आँखों के रहते अन्धा है, जो बीज जहर का बोता है।
चोरी से हरकर परनारी, अब रण में सम्मुख होता है॥
इस उल्टी मत के कारण ही लङ्का की सत्यानाशी है।
यह बारम्बार जता देना-जानकी जान की प्यासी है॥"
चिट्ठी लेकर-दूत वे-चले शीघ्र अत्यन्त।
रावण के दरबार में प्रस्तुत हुए तुरन्त॥
"शुक,सारण,आगए क्या?" बोल उठा दशभाल।
"किस प्रबन्ध में हैं वहाँ कौशल्या के लाल?

पहले तो—सब वृत्तान्त कहा उस बुद्धि विहीन विभीषण का ।
जो देश जाति का द्रोही है, बागी भाई है रावण का ॥
फिर उन लड़कों की बात कहो जो निज प्राणों पर खेले हैं ।
फिर जिसने लंकादहन किया—उस जैसे कितने बनरे हैं ?"
सारण बोला—"है वहाँ हर्ष व्याप्त सर्वत्र ।
लाए हैं हम साथ में लक्ष्मण जी का पत्र ॥
पहले तो दिया रामजी ने लंका का राज्य विभीषण को ।
फिर हम दोनों को जब समझा तो आया क्रोध कीशगण को ॥
लक्ष्मणजी को आगयी दया—हमने जिस समय दुहाई दी ।
मुख से भी कुछ संदेश कहा, चिट्ठी भी लिखी, विदाई दी ॥
हे नाथ, राम तो अद्भुत हैं ! क्या कहें हृदय खो गया वहीं ॥
जिन जिन अङ्गों पर दृष्टिगई मन लुभा-लुभाकर रहा वहीं ॥
चरणों की छवि देखे बनती—वर्णन में तनिक न आती है ।
कमलों पर दौड़ दृष्टि भ्रमरी—बस, बार-बार ही जाती है ॥
श्री रघुकुलभूषण मुस्काकर—लंका की ओर हेरते थे ।
शोभायमान था धनुषबाण—हाथों में उसे फेरते थे ॥
नख शिख-सुन्दरता भरे हैं कोशल के लाल—
शोभित जिनकी देह पर, धूलि और तरु छाल ॥
श्रीमहाराज, अबतक तो थे, रघुराई की चर्चा में हम ।
अब उनके दल-बल का वर्णन करते हैं भरी सभा में हम ॥
जिस ओर देखिए दृष्टि उठा अगणित ही भालू बानर हैं ।
दलबद्ध सभी, रणमत्त सभी, विकराल, कराल भयंकर हैं ॥
सुग्रीव, नील नल, जाम्बुवन्त, हनुमान्, मयन्द, द्विविद, अङ्गद ।
धूम्राक्ष, केसरी, गय, गवाक्ष दधिबल , शरभ, शरभाक्ष, पुरद ॥

अगणित कपि गर्जन-तर्जन कर दहलाते व्योमधरा को हैं ।
कर देंगे क्षण में खण्ड-खण्ड यों देख रहे लङ्का को हैं ॥
नाथ कहाँ तक हम कहें उनकी कथा अपार ?
देख-देख इस पार को कहते थे किलकार—
"कर देंगे छिन्न-भिन्न खलदल, भेजेंगे यमपुर रावण को ।
वह छत्रमुकुट, वह सिंहासन दे देंगे भक्त विभीषण को ॥
श्रीराम न आज्ञा देते हैं अन्यथा अभी दिखलादें हम ।
सेना समेत दशकन्धर को दल डालें धूल मिलादें हम ॥
आसुरी सभा को उलट-पलट चोरी का स्वाद चखादें हम ।
सारी नगरी को चौपट कर—सागर के मध्य बहादें हम ॥
जगदम्बा, जगज्जया, जननी, सीता माँ का ले आएँ हम ।
एकासन राजें राम-सिया, पूजा कर पुष्प चढ़ाएँ हम ॥
इस भाँति हरणकर-भूमि-भार सुर नर-मुनि को करदें निर्भय ।
तब गूँज उठे त्रिभुवन में ध्वनि—श्रीराजारामचन्द्र की जय ॥
सुनकर दूतों की कथा, लषण-पत्रिका बाँच ।
हँसकर रावण ने कहा—"लिया शत्रुबल जाँच ॥
बानर भालू की चिन्ता क्या ? वह तो असुरों का भोजन है ।
रावण से लड़ने आते हैं—लड़कों का यही लड़कपन है ॥
देखो तो छोटे तापसी को कैसी बकवादें करता है !
मृगशावक-शशि के छूने को चौकड़ी छलाँगे भरता है ?

❀ गाना ❀

उन बलवालों में बानर वालों में छोटे से लालों में ऐसी शान बात बताते है आला !
और बोला मैंने अबतक टाला, फिर भी सन्देश—धमकी वाला दे डाला ॥
द्वन्द मचाया है, काल ले आया है । इतराते हैं भड़काते हैं ज्वाला ।
मैं वह हूँ निराला रण-मदवाला पहनाती रण देवी आई जिसको जय की माला ॥"

हाथ बाँध शुक ने कहा—"सुनिए निशचरराज ।
रूठ रहा है आपसे—राज और यह ताज ॥
कुछ होनहार है लंका में—यह हमें दिखाई पड़ती है ।
जो भली बात भी नाथ तुम्हें—विष जैसी कड़वी लगती है ॥
संशय की रही बात ही क्या, जब स्वयं देख हम आए हैं ?
निश्चय ही अपनी ताक़त से—वे डयोढ़े और सवाए हैं ॥
सीता को दे कीजिए सन्धि—जग में यदि जीवित रहना है ।
अन्यथा,हमें यह दीख रहा—उनसे लड़ना खुद मरना है ॥
हम जिसे तपसिया कहते हैं—वह योगेश्वर हैं भूतल में ।
तोड़ेंगे हमें खिलोना-सा—जब खेलेंगे युद्धस्थल में ॥"
रक्तवर्ण रावण हुआ—नेत्र होगए लाल ।
लात मार दर्बार से—दोनोंकोदिए निकाल ॥
यह भी आए रघुबीर-शरण, सब बीती बतलाई अपनी ।
रघुराई की अनुकम्पा से—दोनों ने गति पाई अपनी ॥
शुक-सारण ऋषि थे—शाप-विवश-लंका में रहे अज्ञ होकर ।
अब शाप मिटा आश्रम पहुँचे करुणानिधि के कृतज्ञ होकर ॥
विनय न सागर ने सुनी—बीत गए दिन तीन ।
तब उठ्ठे प्रभु ऊबकर, रह न सके आसीन ॥
बोले—"भय बिन होती न प्रीत, इस कारण बाण चलाना है ।
फिर बाण कौनसा ? अग्निबाण—पानी में आग लगाना है ॥"
यह कहकर बाण चढ़ाया जब—धन्वा का जब टंकार हुआ ।
जलचरदल सारा अकुलाया, सागर में हाहाकार हुआ ॥
जल के भीतर—जब आग उठी—लहरों के ऊपर झाग उठे ।
फूटी वह ज्वालामुखी वहाँ, पानी के सोते जाग उठे ॥

ऊपर से प्रभु की क्रोधानल, नीचे से भड़की वड़वानल ।
दो अनलों में जब आया खल, तब फैली सागर में खलभल ॥
अब तो कञ्चनथाल में, मणिगण भरे अनूप ।
आया शरण कृपालु के धर मानव का रूप ॥
चरणों पर प्रथम नज़र डाली, फिर हीरे मोती नज़र किए ।
फिर हाथ जोड़कर खड़ा रहा, लज्जावश नीची नज़र किए ॥
फिर बोला—"क्षमा क्षमा ! राघव, तुम कृपासिन्धु हो दानी हो ।
जल ने जलने की ठहरा दी, आवरू न पानी पानी हो ॥"
सिन्धु-वचन सुन, हँस पड़े—श्रीरघुराज उदार—
कहा—"बताओ कपि-कटक किस प्रकार हो पार ?"
शीस नवा उसने कहा—"सुनिए करुणागार—
जो आज्ञा हो आपकी—वही मुझे स्वीकार ॥
प्रभु के प्रताप से क्षणभर में शोषण हो सकता है मेरा ।
पर इतना ध्यान रहे भगवन् गौरव भी मिटता है मेरा ॥
क्यों नहीं कार्य वह किया जाय, जिसकी युग-युग तक याद रहे ।
होजाय विजय भी राघव की, सागर की भी मर्याद रहे ॥
नल-नील बड़े वरदानी हैं, वे जल पर सेतु बनाएँगे ।
अपने हाथों से रक्खेंगे तो पत्थर भी तैराएँगे ॥
फिर मदद करेगा सागर भी—मन में यह छुपी भावना है ।
पुल बँधे विजय हो लङ्का पर—मेरी भी यही कामना है ॥
यह अग्निबाण उन पर छोड़ो—जो खल हैं मेरे उत्तर में ।
आरम्भ सेतु का कार्य करो—अत्यन्त शीघ्र शुभ अवसर में ॥"
तीर छोड़ प्रभु ने तभी हरी सिन्धु की पीर ।
सागर गद्गद् होगया हर्षाये रघुवीर ॥

सुग्रीव बोल उठे तुरन्त–"यह ही अवसर मुहूर्त का है।
नल, नील, सेतु आरम्भ करो शुभ कार्य शीघ्र ही अच्छा है॥"
यह सुनते ही कपि सेना में आनन्दपूर्ण जयकार हुआ।
पाषाण शीघ्र ही लाने को वानरमण्डल तैयार हुआ॥
चिकने, चौड़े, उजले, सुडौल, जो ढले कुदरती साँचों में।
कपिगण चुन-चुन ऐसे पत्थर लाते थे बातों-बातों में॥
ले-लेकर नाम रामजी का नल नील उठाते थे पत्थर।
वह चमत्कार था हाथों में जल पर तर जाते थे पत्थर॥
मिस्त्रियों और मजदूरों में उत्साह कार्य का दूना था।
प्राचीन कला का भारत को, वह पुल बेजोड़ नमूना था॥

सेतु बाँधने में सभी करते थे उद्योग।
रघुराई ने भी दिया, लीलावश सहयोग॥

एकान्त जगह में आगे बढ़–जल के ऊपर रक्खा पत्थर।
रघुवर के कर से छुटते ही–सागर में डूब गया पत्थर॥
हनुमत कुछ निकट उपस्थित थे, हँस पड़े देख कर घटना यह।
मन ही मन सोच रहे थे प्रभु–"पाषाण क्यों नहीं तैरा यह॥"

आगे आकर भक्त ने कह ही दिया तुरन्त।
"क्यों डूबा पाषाण यह–बतलादूँ भगवन्त?

यह महिमा नाथ राम की है–जल पर पत्थर तैराते हैं।
उस राम-नाम से राम स्वयं क्यों अपनी होड़ लगाते हैं?
फिर भी कुछ मन की कहता हूँ अपराध क्षमा सरकार करें।
दो पुष्प चरण में रखता हूँ यदि रघुराई स्वीकार करें॥
जो कर कमलों में बना रहा निश्चय वह बना रहा भगवन्।
इन हाथों से जो छूट गया सचमुच वह डूब गया भगवन्॥"

ठीक समय पर होगया सुन्दर सेतु तयार ।
मुस्काकर कहने लगे—तब श्रीकरुणागार ॥
"जो कार्य नहीं हो सकता है सम्राटों से भी बरसों में ।
है साधुवाद द्वारा, तुमको, वह कर दिखलाया दिवसों में ॥
अच्छा अब मेरी इच्छा है-संस्थापन हो शिवशंकर का ।
लङ्का पर चढ़ने के पहले आराधन हो शिवशंकर का ॥
रण के देवता त्रिलोचन हैं--पहले हम उन्हें मनाएँगे ।
मृत्युञ्जय का आवाहन कर राक्षसगण पर जय पाएँगे ॥
असुरों के रखवाले हैं तो—अपने भी रक्षक हैं शंकर ।
है न्याय जहाँ पर सर्वप्रथम, उस जगह सहायक हैं शंकर ॥
मैं उनका हूँ, वह मेरे हैं, हम दोनों क्षीर सर्करा हैं ।
आराध्यदेव या इष्टदेव—मेरे तो भोले बाबा हैं ॥"
इतना सुनते ही हुआ फिर दल में जयकार ।
अपने हाथों राम ने—की शिव मूर्ति तयार ॥
संस्थापन आवाहन, अर्चन-विधि सहित हुआ विश्वेश्वर का ।
सागर-तट बना रामद्वारा इस भाँति धाम सिद्धेश्वर का ॥
प्रभु बोले—"शंकर में मुझमें, है लेशमात्र भी भेद नहीं ।
जो जन अद्वैत उपासक हैं-होता है उनको खेद नहीं ॥
जैसे सब नदियों का पानी—सागर ही में तो आता है ।
त्योंही सब देवों का पूजन—परमात्मा ही में जाता है ॥"
इतने में कहा पवनसुत ने-"अब द्वैत समाप्त तमाम हुआ ।
इसलिए आज से आगे को-'शिवराम' एक ही नाम हुआ ॥"
यह सुनकर फिर जयकार हुआ, ध्वनि गूँज उठी श्रीहरिहर की ।
तुम भी अब 'राधेश्याम' कहो-जय राम और रामेश्वर की ॥

## ❀ गाना ❀

"रसने बोल—जिह्वे बोल—ॐनमो रामाय, ॐनमः शिवाय ।
मन्त्रों में यह मन्त्र अमोल—ॐनमो रामाय, ॐनमः शिवाय ॥
वल्कल इधर, उधर बाघम्बर, यह है धनुधर, वह त्रिशूलधर ।
जटाजूट दोनों के सिर पर, दोनों धूलधूसरित हरिहर ॥
नयन तुला पर तोल—मनुआं, दृष्टि तुला पर तोल ।
रसने बोल—जिह्वे बोल—ॐनमो रामाय, ॐनमः शिवाय ॥
कुन्द-इन्दु सम हैं गिरिजावर नीलाम्बुज—समान सीतावर ।
दोनों कहलाते हैं—ईश्वर "राधेश्याम"—'राम-रामेश्वर' ॥
अन्तर के पट खोल मनुआं—भीतर के पट खोल ।
रसने बोल—जिह्वे बोल—ॐ रामाय, ॐनमः शिवाय ॥"

— ० —

# • श्रीराम-कथा •

संख्या—१६

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है

( लङ्का-काण्ड )

लेखक—

नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—

कीर्तनकलानिधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न

पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—

उन्हत्तरवाँ संस्करण ] सन् १९८२ [ मूल्य १)

## प्रार्थना

हे करुणानिधि भगवान !
करिए अब शक्ति प्रदान ॥

गुण गायें आपका भगवन् ।
आनन्द—सहित हो कीर्तन ॥
हो उच्च कोटि का जीवन ।
उल्लास भरा हो तन-मन—
फिर हम भी हों बलवान ।
करिए अब शक्ति प्रदान ॥

हे नाथ, दुखी हम अतिशय ।
प्रभु कहलाते करुणामय ॥
है बार-बार यह अनुनय ।
हों "राधेश्याम" हम निर्भय ॥
दीजिए यही वरदान ।
करिए अब शक्ति प्रदान ॥

# कथा प्रारम्भ

श्रीरामेश्वर देव का कर पूजन–उपचार ।
बानर सेना सहित प्रभु, उतरे सागर–पार ॥
वहाँ पहुँच कर दिवस जब बीत गए दो चार ।
तब प्रभु मन्त्रीगणों में–करने लगे विचार—
"हे भाई, बतलाओ आगे अब कैसे पाँव बढ़ाना है ?
लंकापति तो चुप बैठा है, कुछ खबर नहीं, क्या ठाना है ॥
हम तो उसके घर आ पहुँचे, वह नहीं युद्ध में आया है ।
लंका के द्वार बन्द क्यों हैं ? कुछ भेद न इसका पाया है ॥
प्रथम विभीषण ने कहा–"सुनिए कृपानिधान ।
रावण साधारण नहीं, है सुजान बलवान ॥
दर्वाज़े बन्द देखकर ही—यह समझ न लें डरता होगा ।
अपने सचिवों के साथ वहाँ वह भी विचार करता होगा ॥"
कुछ दिनों और देखिए राह–यह वीर नीति बतलाती है ।
रिपु को भी युद्ध प्रबन्ध-हेतु थोड़ी 'मोहलत' दी जाती है ॥"
'मोहलत' का प्रस्ताव सुन बोल उठे बजरङ्ग–
"नीतिशास्त्र" का इस समय छेड़ो नहीं प्रसङ्ग ॥
दो चार दिनों की यह 'मोहलत' मुझको तो बहुत खटकती है ।
एक एक घड़ी सीता माँ को बरसों की नाईं कटती है ॥

हम वृक्षों और पत्थरों से रावण का दुर्ग ढहा देंगे ।
चुटकी में द्वार-किवाड़ तोड़ लङ्का में प्रलय मचा देंगे ॥
जब राज-भवन को तोड़ेंगे, तब तो निश्चर घबराएगा ।
सीता जी को दे जाएगा या खुद लड़ने को आएगा ॥

## ❀ गाना ❀

—०—

कर प्रहार तोड़ द्वार करदें हाहाकार ।
सीता मां का हो उद्धार ॥
चलें तुरन्त, कपि अनन्त तेजवन्त क्रोधवन्त ।
हो भिड़न्त पर भिड़न्त करदें बन्टाढार ।
सीता मा का हो उद्धार ॥ १ ॥
स्वर्ण—कोट ढा—सिन्धु में बहा ।
दैत्य—कुल मिटा, मृत्यु पथ दिखा ॥
शीलवन्त, ओजवन्त धर्मवन्त धैर्यवन्त ।
अन्त—तन्त जानकी को लायेंगे छुड़ा ।
तब है अपना नाम शीघ्र हो सब काम ।
जीत आयें राम, जय हो "राधेश्याम" ।
इस प्रकार—यह विचार-कीजिये स्वीकार ।
सीता मां का हो उद्धार ॥ २ ॥"

—: ०० :—

बजरङ्गी की बात सुन, बोल उठे कपिराय ।
"जय पाने के लिए है यह भी उचित उपाय ॥
फिर भी मेरी यह सम्मति है निज दूत प्रथम भेजा जाए ।
जो बैरी के-मन का, बल का, सारा ही भेद लगा लाए ॥
सम्भव है-शत्रु सुलह करले तब तो विचार यह सुन्दर है ।
इस कटने मरने से पहले-उसको समझाना बेहतर है ॥
तुम बुद्धिमान् हो हनूमान् कहते हो बात ठिकाने की ।
फिर एक बार बस तुम्हीं वहाँ तकलीफ़ उठाओ जाने की ॥
जामवन्त कहने लगे-"है तो ठीक विचार—
पर-हनुमत् ही जाँय फिर यह न हमें स्वीकार ॥

रावण अवश्य यह समझेगा सारा आधार इसी पर है
आता है यह ही बार-बार-इस कारण यही दिलावर है।
जो कुछ सुझाव रखता हूँ मैं इसमें है नीति मान भी है!
इस बार भेजिए अङ्गद को यह समझदार बलवान भी है॥"

उट्ठे अपना नाम सुन-अङ्गद बल-बुधि-धाम।
( प्रस्तुत कोई कर न दे और दूसरा नाम )॥

प्रभु बोले-"बालितनय, तुमको हम पुत्र समान समझते हैं।
लङ्का में दुश्मन के घर में इसलिए भेजते डरते हैं॥
फिर उचित नहीं है दूतकार्य किष्किन्धा के युवराज तुम्हें।
कपि-सेना-सञ्चालन का शोभा देता है काज तुम्हें॥"

अङ्गद बोले सिर नवा-"सुनिए कौशलनाथ।
रखिए आशीर्वाद का मेरे सिर पर हाथ—
जिस जन पर कृपा आपकी हो वह जाकर लड़े रसातल तक।
निर्भय है उसको भय न कहीं उदयाचल से अस्ताचल तक॥
निश्चय ही धाक जमाऊँगा—मैं रावण की रजधानी पर।
प्रभु का प्रताप ही ऐसा है—पत्थर तैरे हैं पानी पर॥
जन से हो कार्य जनार्दन का इससे बढ़कर सम्मान नहीं।
युवराज आपका दूत बने तो कुछ घटता है मान नहीं॥
मैं भी श्रीहनुमत् के समान—सेवा करने को उत्सुक हूँ—
हे मेरे सर्वस, आज्ञा दो, सत्वर जाने को इच्छुक हूँ॥"

अङ्गद के यह वचन सुन, मुदित हुए रघुनाथ।
दे विशेष अधिकार बल रक्खा सिर पर हाथ॥

'युवराज' जानते हैं हम-यह सच्चे व्यवहार-कुशल तुम हो।
बलवान् बाप के बेटे हो, सब भाँति समर्थ-सबल तुम हो॥

कुछ धर्मनीति, कुछ राजनीति कुछ बल भी दिखलाते आना ।
बलवीर, जहाँ तक सम्भव हो, सब झगड़ा निपटाते आना ॥
अङ्गद जब जाने लगे पुलकि-प्रफुल्लित गात ।
तभी विभीषण ने कहा—"सुनो हमारी बात ॥
दो एक सँदेश हमारे भी कह देना हठी दशानन से—
जिसने कि किया था पद-प्रहार, मुझ पर उठकर सिंहासन से ॥
मैं मूर्ख और विद्रोही हूं वह तो सब बात समझता है ।
अब देखें लङ्कानगरी की—किस प्रकार रक्षा करता है ॥
यह भली भाँति जतला देना—उस महाभिमानी रावण को ।
घर भर में एक विभीषण ही रह जाएगा बस तर्पण को ॥"
मन्द-मन्द हँसने लगे—रामचन्द्र रघुराय ।
अङ्गद को करने विदा—उठा कोश समुदाय ॥

## * गाना *

"जाओ रणवीर, जाओ बलवीर, रक्षक श्रीरघुवीर, धीर ।
दुष्टजनों को लताड़ के बैरी के दल में दहाड़ के ॥
बढ़कर, भिड़कर, आओ, कर सब काम ॥
है प्रसाद—आशीर्वाद—
तेरी वहां जय हो जय ।
कर प्रस्थान चतुर गम्भीर ॥"

—: o :—

गरज, पवनगति चले जब बालितनय बलवीर ।
लगे निरखने प्रेम से श्रीलक्ष्मण, रघुवीर ॥
पग प्रहार से तोड़कर लङ्का-द्वार-कपाट ।
किया प्रवेश तुरन्त ही प्रहरी जन को डाट ॥
बाँका, बलवाला, मतवाला, मल्लों की नाईं चलता था ।
रणरङ्गी जङ्गी, झूम झूम सिंहों की भाँति गरजता था ॥

रावण के सुत से-अनायास—जाते जाते मुठभेड़ हुई।
आदर न किया कुछ अङ्गद ने, बस इसी बात पर छेड़ हुई॥
पहले भौंहें कुछ टेढ़ी कर-उसने इस भाँति कलाम किए-
"आगे से मेरे हटा नहीं, जाता है बिना प्रणाम किए?
इस असभ्यता का स्वाद तुझे ओ बनरे अभी चखाऊँगा!
मैं राजकुमार यहाँ का हूँ, बोटी-बोटी नुचवाऊँगा॥"
अंगद अंगारा हुए, कहा-"बस ख़बर्दार।
दूध न सूखा होंठ का-बना सिपहसालार॥
हम जिसके भेजे आए हैं-वह स्वामी भूमण्डल का है।
आगे से हटे प्रणाम करें-क्या तेरा हम पर कर्ज़ा है?
हम बालिराज के बालक हैं-जो अपने बल में पूरा था।
तू क्या है, तेरे रावण को छः मास काँख में रक्खा था॥
करता है बेढङ्गी बातें-उससे? जो दूत राम का है।
नादान, आँख को खोल देख, अंगद से आज तू भेंटा है॥
वह बोला-"बस मौन हो मुँह को लगा लगाम-
आज सामना होगया-कभी सुना था नाम॥
हम राजेश्वर के बेटे हैं, तू दासों से भी बदतर है।
हम शेरों से भी बढ़कर हैं, तू स्यारों से भी कमतर है॥
क्या दूत उन्हीं लड़कों का है? जो मारे मारे फिरते हैं?
छूटा है जिनका राजपाट बन-बन दुखियारे फिरते हैं?
जिनकी वह सुन्दर-सी नारी लंका के बन्दी-घर में है।
उनका गुलाम बन बेवकूफ़ क्यों आया राज-नगर में है॥"
तभी—काटकर बात को बोले प्रभु के दूत—
"वाह! वाह! क्या बात है! चोर पिता के पूत!

ले आए हो—पर-नारी को भिक्षुक बाबा बन चोरी से ।
तारीफ़ तुम्हारी तो तब थी लाते लड़कर शहज़ोरी से ॥
अब समय हमारा आता है, ठहरो तुमको दिखलाएँगे ।
लङ्का में कर भीषण सँहार सीता माँ को ले जाएँगे ॥
हम उनके हैं जिनकी प्रभुता—पत्थर तैराता पानी पर ।
आगए बनाकर—'सेतु-मार्ग' तेरी लङ्का रजधानी पर ॥
जिनका छोटा सा दूत एक अक्षयकुमार को मार गया ।
लङ्का में भीषण आग लगा बेख़ौफ़ समुन्दर पार गया ॥
जिनका तेजस्वी मुख निहार रीझी श्री शूर्पणखा जी हैं ।
जो बुआ तुम्हारी होती हैं—लङ्का में सती साध्वी हैं ॥
बोलीं "मुझ दासी को स्वामी ले चलो अवध शादी करके ।
तब लषणलाल ने क्रोधित हो—भेजा नकटी बूची करके ॥"

बात बात में यों बढ़ी बिना बात की रार ।
दोनों थे रणकेसरी—दोनों राजकुमार ॥

अङ्गद के मुँह लगकर उसने जब इस प्रकार मुँह की खाई—
तो खिसियाकर खाँड़ा तोला बोला—"क्या मौत खींच लाई ?"
आपे से बाहर हो उसने—खाँड़े का जभी प्रहार किया ।
कपि ने कर खण्ड-खण्ड खाँड़ा राघव का जय-जयकार किया ॥
अब तो सब अस्त्र शस्त्र छूटे मल्लों की भाँति भिड़न्त हुई ।
बलवन्त दुरन्त लड़न्तों की मुठभेड़ बिकट अत्यन्त हुई ॥
कटि तोड़ अन्त में अङ्गद ने उसको निःशक्त नितान्त किया ।
पलभर में पत्थर पर पटका पल्टा देकर प्राणान्त किया ॥

लङ्कापुर में हुआ अब घर घर हाहाकार ।
नर नारी डरने लगे बन्द हुआ बाज़ार ॥

हाटों, बाटों में घाटों में हर एक जगह यह बात चली ।
फिर लङ्का में पहले वाला—आपहुँचा है बजरङ्गबली ॥
अपने—अपने घर को देखो रण तो यह मरण—समान हुआ ।
लङ्कानगरी के जलने का, भैया रे, फिर सामान हुआ ॥
सब जगह निशाचर इसी तरह—अङ्गद की बातें करते थे ।
अङ्गद की ऐसी धाक जमी, छाया से उनकी डरते थे ॥
जिसपर भी दृष्टि डालते यह—वह भय से सूखा जाता था ।
पूछना चाहते मग जिससे वह बिन पूछे बतलाता था ॥
उस ओर राज के दूतों ने सब देखा सुना बखान किया ।
इस ओर सभा में रावण की अङ्गदजी ने प्रस्थान किया ॥

❀ गाना ❀

—•—

चला केहरी बिगड़कर, प्रहरी को मार ।
धाँय धाँय साँय साँय अलबेला, अकेला अलौकिक कुमार ।
बुद्धिमान है, तेजवान है, घोर ज्ञानवान है ।
सबल है प्रबल है, विमल है—अटल है बाँका विक्रमबली से ।
गुणी है, हठी है, कुशलता, चतुरता—अभयता आगार ॥

—:*:—

राज रहा था सभा में—जब रजनीचरराज ।
द्वारपाल ने आ कहा—"जय राजेश्वरराज ॥
तपसी बच्चों की सेना से—अङ्गद नामक कपि आया है ।
अपने को दूत बताता है, कुछ राज संदेशा लाया है ॥
है खड़ा मस्त हाथी समान, मिलने की प्रबल प्रतीक्षा में ।
यदि आज्ञा हो तो आने दूँ राजाधिराज की सेवा में ॥
इतना कहकर चुप हुआ—ज्योंही ड्योढ़ीवान ।
बोल उठा तत्काल ही सचिव एक मतिवान ॥
श्रीमान् वही वानर होगा—जो अभी नगर में आया है ।
दूतों ने जिसकी बात कहीं, घर-घर जिसका भय छाया है ॥

क्या काम यहाँ नटखट, मुँहफट, ऐसे मर्कट हत्यारे का—
जो आया द्वार किवाड़ तोड़, घातक है राजदुलारे का ?
है उचित द्वार ही से उसको कारागृह में भिजवादें हम ।
चौरस्ते ही में सन्ध्या को फिर शूली पर चढ़वादें हम ॥"
मन्त्री का प्रस्ताव सुन—हुआ दशानन लाल ।
सिंहासन पर तड़पकर, बोला आँख निकाल—
"मतिमान् आज मतिमन्द न बन मत दे मत हारे हारे का ।
वह मर्कट नहीं, महाभट है—जो घातक राजदुलारे का ॥
बेहतर है यहाँ करें स्वागत आदर से उसे बुलाएँ हम ।
ऐसे योद्धा को कौशल से बस अपनी ओर मिलाएँ हम ॥
अब राजपुत्र की बात रही—सो उसकी मुझको व्यथा नहीं ।
वह तो अपयश का टीका था, कुछ अच्छा मुझको जँचा नहीं ॥
बानर से लड़कर खेल गया ? कायर था कर्महीन था वह ।
ऐसे कपूत का रोना क्या ? मर—जाए अगर मर गया वह ॥
फिर राजदूत का वध अनुचित इसलिए स्वीकृत मत है यह ।
आने दो—उसको सभा मध्य, आदेश न्याय-संगत है यह ॥"
आज्ञा दी दशकण्ठ ने—"लाओ भले प्रकार ।
द्वारपाल ने आ कहा, आए बालिकुमार ॥
रावण बोला—"कौन-तू ? बतला अपना नाम ।
हुआ कहाँ से आगमन ? क्या है मुझसे काम ?"
अंगद बोले—"लीजिए—नमस्कार दशभाल ।
दूंगा चार जवाब मैं हैं—जब चार सवाल ॥
हे महाराज राजाधिराज, मैं दूत राम रघुवर का हूँ ।
युवराज देश किष्किन्धा का सुत बालिराज बानर का हूँ ॥

हैं पूज्य पिता के मित्र आप, इस कारण मिलने आया हूँ ।
अवसर विशेष के योग्य बात-कुछ कहने सुनने आया हूँ ॥
रावण बोला-लिए हैं तूने जिनके नाम—
ध्यान नहीं उनका मुझे कौन बालि या राम !"
अंगद अब बोले-"ध्यान न हो ! कारण तब बुरी अवस्था थी ।
जब बालि-काँख में बन्दी थे उस समय आपको मूर्छा थी ॥
इसलिए बालि को भूल गए तो बड़ी न भूल महोदय की ।
इसमें अचरज है नहीं मुझे पर एक बात विस्मय की ॥
भगिनी श्रीशूर्पणखाजी को प्रतिदिन दशबदन देखते हैं ।
इसलिए अचम्भा तो यह है श्रीराम नाम भी भूले हैं ॥
अब जान गए तुम राम कौन या पिछली और कथा कहदूँ ?
ले जाउँ ध्यान जनकपुर में इतिहास स्वयंवर का कहदूँ ?
श्रीराम राजराजेश्वर हैं, पुरुषोत्तम हैं परमेश्वर हैं ।
बानर की तो गितनी ही क्या-सुर-नर-मुनि उनके अनुचर हैं ॥
उनका ही सेवक अंगद यह-कर्तव्य चुकाने आया है ।
इस उल्टी राजसभा में कुछ-सीधी समझाने आया है ॥

## * गाना *

हे राक्षसराज, सुनिए विनय हमारी ।
जप तप आपने किए हैं, वरदान अनेक लिये हैं ।
सोहे लंका का ताज, सुनिए विनय हमारी ॥ १ ॥
हे पौत्र पुलस्त्य यती के, सद्वादी, सत्यव्रती के ।
वंश की रखिए लाज, सुनिए विनय हमारी ॥ २ ॥
क्यों अहंकार में आए ? बैदेही को हर लाए ।
नहीं उत्तम यह काज, सुनिए विनय हमारी ॥ ३ ॥
रण नहीं सन्धि ही करिए, सीता दे प्रभु से मिलिए ।
शरण देंगे रघुराज, सुनिए विनय हमारी ॥ ४ ॥
यह 'राधेश्याम' निवेदन—है सच्चे सुख का साधन ।
मानिए इतनी आज, सुनिए विनय हमारी ॥ ५ ॥

रुचा न राक्षसराज को अङ्गद का व्याख्यान ।
आँख बदलकर कहा—"चुप वकवादी अज्ञान ॥
क्या तुही है अङ्गद ? हे अङ्गद, क्या तुही बालि का बालक है ?
क्या तुही बाँस की ज्वाला है ? क्या तुही बालि का घालक है ?
यदि तेरा गर्भ नष्ट होता तो होता आज अकाज नहीं ।
तपसी का दूत कहाने में आती है तुझको लाज नहीं ॥
संहारा जिसने बालि बाप धिक् है तू उसका दास हुआ ।
जो मित्र पिता का है तेरे, उस पर न तुझे विश्वास हुआ ॥
वास्तव में तू मेरा होता या मेरी ओर मिला होता—
तो देख प्रताप भानु मेरा तेरा यशकमल खिला होता ॥
अब भी तू मुझसे मिल जाए तो तेरी शुभ गति हो जाए ।
इस बड़े राज्य का लङ्का का कल से सेनापति हो जाए ॥"
कूट वचन सुन बालिसुत करने लगे विनोद—
"सेनापति से शून्य है क्या लंका की गोद ?
मैं यह सेवा करता—परन्तु मुझमें इतनी योग्यता कहाँ ?
लंका का सेनाध्यक्ष बनूँ यह बुद्धि और वीरता कहाँ ?
सेनापति अगर चाहते हो तो रामादल में फ़ाज़िल हैं ?
दो चार नहीं, सैकड़ों वहाँ सेनापति बनने काबिल हैं ॥
पर शायद ही स्वीकार करे—कोई इस मैले गहने को—
नारियाँ चुराई जायँ जहाँ ऐसे कुराज्य में रहने को ॥
अन्यथा—एक विभीषण तो इस सेवा को आ सकता है ।
सेनापति क्या, तुम चाहो तो वह राज भी चला सकता है ॥
अन्यथा, संदेशा है उसका इस लंकाधीश्वर रावण को ।
सारी लंका में एक वही—बस शेष रहेगा तर्पण को ॥

इसलिए त्यागकर बैर-भाव उज्ज्वल मन का दर्पण करिए ।
कीजिए सन्धि रघुनायक से–सीता उनके अर्पण करिए ॥
यह खूब समझ लीजिए कीश लंका में पाँव धर चुके हैं ।
'निश्चर से हीन करूँगा महि'–यह प्रण रघुवीर कर चुके हैं ॥
रावण बोला–"प्रण नहीं, है यह सब बकवास ।
कैसी निश्चरहीन महि ! निश्चर है जब पास ॥
मेरे शरणार्थी भाई को–भाई की भाँति पालते हैं ।
मिलते ही अभय-दान देते लंकेश्वर बना डालते हैं ॥
जब तलक विभीषण निश्चर वह उस दल में शोभा पाएगा ।
'निश्चर से हीन करूँगा महि'–यह प्रण बकवास कहाएगा ॥"
"बलिहारी इस समझ की"–बोले कपि बुधिधाम ।
'निश्चर समझा आपने क्या शरीर का नाम ॥
तन से तो कोई भी प्राणी–सुर असुर न माना जाता है ।
आचरणों से देवता और निश्चर पहचाना जाता है ॥
जब गया विभीषण राम शरण, तो कैसे मानें निश्चर है ।
जाता जो शरण नहीं उनकी वह ही यथार्थ में निश्चर है ॥
सुने काट करते हुए अङ्गद के जब बैन ।
तब रावण कहने लगा कुछ मरोड़कर नैन ॥
"अच्छा यदि सन्धि चाहते हैं–स्वीकार मुझे इन नियमों पर–
पहले दें भेज विभीषण को सिर रक्खे मेरे चरणों पर ॥
फिर तोड़ें सेतु समुन्दर का–आ सकें न कोई लंका में––
फिर हनूमान का मान मिटा–भेजें रावण की सेवा में ॥
उस समय दबा तृण दाँतों में शरणागत हो इन बाणों की ।
कर जोड़ें मेरे राम-लषण भिक्षा मागें निज प्राणों की ॥"

रावण की यह बात सुन हुए बालिसुत लाल ।
फिर भी बोले पूर्ववत् दबा क्रोध की ज्वाल—
बस यह ही या कुछ और अधिक ! यह तो माँगें साधारण हैं।
मैं जाकर उनसे कह दूँगा—चारों बातें साधारण हैं ।
जिन हाथों ने पुल बाँधा है, वे उसे तोड़ भी डालेंगे ।
लंका का माल विभीषण है, लंका में उसे भेज देंगे ॥
हो चुकी हानियाँ जो अबतक, उन सबको तो हम भर देंगे ।
पर एक हुई है महाहानि—वह कैसे पूरी कर देंगे ?
जब जब तुम घर में जाओगे तब तब नजरों में आएगी ।
श्रीशूर्पणखा की कटी नाक किस प्रकार जोड़ी जाएगी ?"
रावण अब गर्जा, कहा--"अरे ढीठ हो मौन ।
लंकापति से रण करे ऐसा जग में कौन ॥
मालिक तेरा नाबालिग है फिर नारी का दुख सहता है ।
उसके दुख से-भाई उसका हर वक्त दुखी ही रहता है ॥
बानर सब मूली गाजर हैं, सुग्रीव पेड़-सरिता तट का ।
जिस जाम्बुवन्त पर फूले तुम चौथापन है अब उस भट का ॥
नल और नील शिल्पी कोरे सीखे न युद्ध में आना वह ।
है भक्त विभीषण भक्त निरा, क्या जाने खड्ग उठाना वह ॥
कुछ है तो एक वही कुछ है जो आकर लंका जला गया ।
क्या कहूँ तोड़कर तीली को धोखे से पक्षी चला गया ॥
अंगद बोले-हैं फिर कहिए यह क्या श्रीमुख ने कथन किया ?
क्या उस छोटे से बानर ने सचमुच ही लङ्का दहन किया ?
वह क्या जाने रण का कौशल, बस पूँछ नचाया करता है ।
है भागदौड़ में नामी वह चिट्ठियाँ घुमाया करता है ॥

कपिपति ने चलते समय उसे, कर्त्तव्य चार समझाए थे ।
आगए ध्यान में वह मेरे–जो उसको काम बताए थे—
'पहले लङ्का में जाने ही सीता माता की सुधि लेना ।
फिर लङ्कानगरी को ढाकर सागर के मध्य बहा देना ॥
तीसरा काम–'सीताजी' को कन्धों पर बिठला के लाना ।
चौथे बन्दी कर रावण को साथ ही साथ लेते आना ॥
यह आज इस समय प्रकट हुआ कुछ काज न वह कर पाया है ।
इसलिए वहाँ पहुँचा न अभी शायद मुँह तक न दिखाया है ॥
कुछ ज्ञात नहीं किस ओर गया–जा छुपा कौन से जंगल में ।
जो तुम्हें खटकता है राजन् वह है ही नहीं रामादल में ॥

अंगद की यह बात सुन–काँपा असुर समाज ।
कहें–"कहीं पूरे करे यही न चारों काज ॥
घी पड़ते ही–जिस तरह उत्तेजित हो ज्वाल—
त्यों ही राक्षसराज भी भवक उठा तत्काल ॥

बोला–"तुझको यह ज्ञात नहीं–मैं कालजीत मतवाला हूँ ।
जिसके काटे का मन्त्र नहीं ऐसा भुजंग विषवाला हूँ ॥
मेरी इन बड़ी भुजाओं ने कैलास पहाड़ उठाया है ।
यम, इन्द्र, कुबेर वरुणमण्डल इन बाणों से थर्राया है ॥
श्रीसूर्यदेव संकेतों पर–पूरब से पश्चिम जाता है ।
इच्छा पर मेरी पवनदेव, ठंडाता है गर्माता है ॥
मुझसा पण्डित, मुझसा योद्धा, त्रिभुवन में और न दूजा है ।
अपने शीशों को काट–काट शंकर को मैंने पूजा है ॥"

अंगद बोले—"धन्य है—हे जादूगरराज ।
स्वयं बड़ाई मारते—तुम्हें न आई लाज ॥

जो करनी करने वाला है वह करता है कहता कब है ?
यह यो मशहूर कहावत है जो गर्जा है बरसा कब है ?"
श्रीमान् कभी पाताल गए, बलि राजा के बल भञ्जन को ।
कुछ छोटे छोटे बच्चों ने कर दिया खत्म योद्धापन को ॥
घुड़शाला में दसमुण्डों का जब दीपाधार बनाया था ।
तब दया आगई थी बलि को खुद जाकर तुम्हें छुड़ाया था ॥
उस रोज सहस्रबाहु ने भी-सब शान किरकिरी करदी थी ।
कुछ सुधि है धनुष महोत्सव में जब मौ पर बिन्दी धरदी थी ॥
क्या कहा आपने ? शीस काट शङ्कर की भेंट चढ़ाए हैं ।
काटें तन इन्द्रजालिए यदि तो योद्धा नहीं कहाए हैं ॥
जतलाते ! बारम्बार आप मैं बड़ा हठी हूँ क्रोधी हूँ ।
बलिहारी ! यह भी तो कहिए मैं बालि-काँख का कैदी हूँ ॥

## ❋ गाना ❋

—❋ ० ❋—

ऐसे बात बनानेवाले—हमने लाखों देखे—भाले ।
अपनी महिमा गानेवाले, ऋषियों को सतानेवाले ॥
लंकाधीश कहानेवाले—परनारी चुरानेवाले ।
जिनको साधारण समझा है तपसी बालक माना है ॥
वे ही बालक कालरूप हैं, क्या जाना है ? क्या जाना है ।
अब भी बचने का अवसर है वैद्य चिकित्सा को तत्पर है ॥
चूक गए तो डर ही डर है मृत्यु नृत्य करती सर पर है ।
दिग्गज दादुर को मारे तो उसकी नहीं प्रतिष्ठा कुछ है ॥
मृगपति मच्छर को मारे तो उसकी नहीं प्रशंसा कुछ है ।
यही झमेला है झंझट है वध करने में सकुचाहट है ॥
फिर भी सारी बात प्रकट है—रघुवंशी का क्रोध विकट है ।
सोनेवाले ! जाग आलसपन को अपने त्याग ॥
तजकर अहंकार का राग, ले आ मानस में अनुराग ।
ऊँचे स्वर से जगा रहे हैं, तेरे हित् जगानेवाले ॥ ऐसे ॥

—: ० :—

रावण बोला—"बन्द कर उपदेशक का कार्य ।
तपसी का तू दूत है, या कोई आचार्य ?
मर्यादा के भीतर ही रह, अधिकार न रार बढ़ाने का ।
बकवादी, तेरा काम नहीं सिर हो—होकर समझाने का ॥
वह दोनों आप निवट लेंगे जिनमें ठन रही लड़ाई है ।
तू तो पेड़ों पर उछल कूद, क्यों, बकबक यहाँ लगाई है ?"
अङ्गद बोले—"ठीक है, सुनिए तनिक तथापि ।
यह आवश्यक विषय है, बकबक नहीं कदापि ॥
यदि दोनों ओर सन्धि होगी सैनिक बलिदान नहीं होंगे !
सब बने रहेंगे ठाट बाट जन-पथ सुनसान नहीं होंगे ॥
रण की चंडी चेतेगी तो—यह धरती शोणितमय होगी ।
जय और पराजय फिर होगी पहले तो महाप्रलय होगी ॥
जिस समय अराजकता फैली—तो घर ही में ठन जाएगी ।
यह हरी- भरी लंका नगरी शमशान भूमि बन जाएगी ॥
बच्चे अनाथ होजाएँगे, बहुएँ विधवा होजाएगी ।
लाखों पुत्रों की माताएँ—घर-घर कोहराम मचाएँगी ॥
एक और भी बात है वह है अपना भाव ।
तनिक उसे भी ध्यान धर सुनिए महानुभाव ॥
जबतक लंका के राजा की—यह सुन्दर मूर्ति सुशोभित है ।
तबतक स्वर्गीय पिताजी की—सब जगह कीर्ति भी जीवित है ॥
अर्थात् आपके दर्शन कर तत्काल ध्यान में आता है ।
जो बालि काँख में दबा रहा यह वह ही रावण राजा है ॥
जिस दिन यह पराक्रमी दशमुख पृथ्वी तल से उठ जाएगा ।
यश मेरे पिता बालि का भी भूमण्डल से उठ जाएगा ॥

इसलिए जियो, तुम खूब जियो हो कीर्तिस्तम्भ वालिवर के ।
जीने का साधन भी यह है सेवक हो जाउ सियावर के ॥"

रावण बोला-'बन्दकर वचन व्यङ्ग—आघात ।
छोटे मुख से कर रहा बहुत बड़ी तू बात ॥
जो कायर और भयातुर हैं वे सन्धि—सँदेश पठाते हैं ।
सच्चे योद्धा सर देते हैं —पर सर को नहीं झुकाते हैं
मेरी दुर्दण्ड चंडता से—बढ़कर प्रचण्ड मार्तण्ड नहीं ।
तू राजदूत है इस कारण--दे रहा सभा में दण्ड नहीं ॥
पर अब मैंने यह ठान लिया दुर्वचनों का बदला लूँगा ।
जब राजसभा से जाएगा--तब तुझको मरवा डालूँगा ॥"

अंगद बोले--"हो चुका शूली का आदेश-
तो सुनले फिर अब ले अधम, खरा खरा उपदेश ॥
अज्ञानी, अभिमानी, राक्षस, तू किस घमंड में फूला है ।
जग में मनुष्य है इस प्रकार-- जल पर जिस तरह बबूला है ॥
तू अपनी इस शेखी में है--त्रिभुवन को मैंने जीता है ।
क्या सुनी न यह लोकोक्ति कभी अन्यायी अधिक न जीता है ॥
जब दिन मरने के आते हैं-- अत्यल्प आयु रह जाती है ।
तो बुद्धि निपट उल्टी होकर मद के जल में बह जाती है ॥
पापों ने अन्धा किया तुझे अन्तिम दिन आने वाला है ॥
दो चार रोज़ में रावण तू इस जग से जाने वाला है ॥
उस जग में बालिराज से मिल सब मेरी कुशल सुना देना ।
सुग्रीवराज का इन्तिज़ाम, हनुमत का काम बता देना ॥
लंका का राज्य बिभीषण को, ओ जाने वाले देता जा ।
श्रीकुम्भकरण, श्रीमेघनाद को, साथ साथ ही लेता जा ॥

तय करले--रानियों से जाकर—लङ्का नाथ ।
कौन कौन सी होयँगी सत्ती तेरे साथ ॥"
यह सुनते ही होगया लङ्काधीश्वर आग ।
बोला--"दुर्भाषी ठहर, यह दुर्भाषा त्याग ॥
जिस बल कटु शब्दों में, तूने मुझको झकझोरा है ।
वह तपसी कल का बालक है, बल- बुद्धि-ज्ञान में कोरा है ॥
गुणहीन बाप ने तब जाना जब देश निकाला दिया उसे ।
रोता है नारि विरह में वह, इस दुख ने मुर्दा किया उसे ॥
मेरे रजनीचर विकटानन--मानवभक्षी कहलाते हैं ।
ऐसे ऐसे बच्चों का तो एक ही ग्रास कर जाते हैं ॥"
प्रभु के प्रति अपशब्द यह बोला जब दशभाल ।
भबकी अंगद-हृदय में तुरत क्रोध की ज्वाल ॥
जो सेवक अपने कानों से--स्वामी की निन्दा सुनता है ।
परिहार नहीं करता है तो--गोवध का पातक लगता है ॥
यह सोच धरणि पर कर मारे--क्रोधाग्नि दबाए दबी नहीं ॥
'अचलेश्वर का अपमान हुआ, फिर भी अचला तू चली नहीं ॥
डगमगा उठी इस पर धरती, चकराया माथ सभा भर का ।
लंका में हलाचला आया, उड़ गया रंग लंकेश्वर का ॥
सिंहासन से चक्कर खाकर गिर गया दशानन धरती पर ।
हाथों से उन्हें उठाता था—जो मुकुट गिरे थे पृथ्वी पर ॥
छै तो तुरन्त ही उठा लिए फिर अवसर मिला नहीं खल को ।
कारण अंगद ने शेष चार—फेंके चटपट रामादल को ॥
मुकुटों पर बानरों की जिस क्षण पहुँची दृष्टि ।
बोले—"क्या होने लगी-तारागण की वृष्टि ॥

यह तारे हैं या अंगारे—बिजली है या कि वज्र हैं यह ?
हम सबको है कुछ दृष्टि-रोग, अथवा आसुरी अस्त्र हैं यह ?"
मुस्काकर बोले राघवेन्द्र—"नक्षत्र, न वज्र, न शरहैं यह।
होता है विदित हमें ऐसा—रावण के मुकुट, सुघर हैं यह ॥"
यह सुनकर झपटे हनूमान् चारों को क्षण में ले आए।
वे रत्न—जटित राजसी मुकुट, श्रीरघुनायक को दिखलाए ॥
बोले—'अंगद के जाते ही-- रुक सके न पास निशाचर के।
यह साम-दाम, यह दण्ड-भेद, शरणागत हुए सियावर के ॥"
इधर हुआ क्रोधान्ध वह—भूला शिष्टाचार।
था समीप जो असुरदल, उससे कहा पुकार—
पकड़ो—इस ढीट वानरे को, रस्सियाँ बाँधने को लाओ।
लोहे की गर्म छड़ें लेकर—इसका सारा तन झुलसाओ ॥
मुखिया बलवान् इधर आओ, आदर्श पूर्ण कर दिखलाओ ॥
जाओ रामादल में जाओ, वनरों भलुओं को खा जाओ ॥
उन वनवासी दो लड़कों को--मेरे सन्निकट बाँध लाओ।
यह कार्य कदाचित् भारी हो--तो बेटा मिघना, तुम जाओ ॥"
विक्षासों जैसे वचन सुनकर बारम्बार।
प्रलयमेघ--सम गरजकर बोले बालिकुमार--
"ओ झूठे नारी चोर मूर्ख क्या सन्निपात हो गया तुझे ?
ले आऊँ कोई बड़ा वैद्य जो चन्द्रोदय दे खिला तुझे ?
आँखों से देखा चमत्कार उन वनवासी के किंकर का।
मेरे बल से अनुमान लगा--उन राघवेन्द्र बलसागर का ॥
लंका है गूलर-फल समान, भुनगों से निश्चर बसते हैं।
बनरों का तो स्वभाव है यह—फल खाकर पेड़ तोड़ते हैं ॥

जिस घर में हरि का नाम नहीं, ऊजड़ हो जाए जल जाए ।
जो रसना उसे नहीं भजती, वह सड़जाए वह गल जाए ॥"

रावण बोला-"हो चुका-पूरा अब सम्वाद ।
आगे यदि कुछ कहा तो होगा महाविषाद ॥
क्या गरज पड़ी है सागर को-जो किसी ताल से मेल करे ।
किसलिए दिवाकर-दिवानाथ दीपक से जाकर खेल करे ?
तपसी हैं गन्ने के समान, मेरा हर निश्चर हाथी है ।
मत कर अजान की सी बातें जानकी जान की साथी है ॥

जान कीश दशशीश को-गर्वोन्मत्त महान ।
बोला-"रे शठ, जानकी, जानकीश की जान ॥
अनजान, जानकी अजान की, अब जान जानकी भासी है ।
देदे जानकी नहीं तो सुन जानकी जान की प्यासी है ॥
अबला को कलपाएगा तो—कल कभी नहीं तू पाएगा ।
पातकी पातकों का बदला गर आज नहीं कल पाएगा ॥
असुरों के गुण तू गाता है यह तेरा धोखा है छल है ।
अच्छा परीक्षा लेता हूँ देखूँ इनमें कितना बल है ॥"
यह कहकर ध्यान शक्ति का धर अङ्गदजी पाँव जमाते हैं ।
युवराज भक्ति का चमत्कार-दुनिया भर को दिखलाते हैं ॥
क्षणभर में पाँव धरातल पर-जम गया विशाल हिमाचल हो ।
तब गरज वालिसुत बोल उठे-"वह आजाए जिसमें बल हो ॥
मेरा यह पाँव चलायमान-कर कोई असुरकुमार गया—
तो रामचन्द्र फिर जाएँगे, सीताजी को मैं हार गया ॥"

अब तो खलभल मच गई, उठे सभी प्रण ठान ।
झपट जुट पड़े पाँव पर बड़े बड़े बलवान ॥

अड़कर, बढ़कर, गिरकर, पड़कर, उठ-उठकर होड़ लगाते थे ।
पग हटता था न हठीले का, हठधर्मी हट-हट जाते थे ॥
ऐसे वैसों की क्या गिनती ? बल इन्द्रजीत का घटा वहाँ ।
पृथ्वी काँपी, भूकम्प हुआ, पर पाँव न तिलभर हटा वहाँ ॥
तब तो दशकन्धर आप उठा, बीसों हाथों को उठा लिया ।
जब रावण को बढ़ते देखा पग रामदूत ने हटा लिया ॥
बोले-सेवक के पाँओं पड़—क्यों अपनी शान घटाता है ?
क्यों नहीं पकड़ता राम-चरण उसमें क्यों लज्जा खाता है ?
क्या होगा मेरे पैर पकड़ ? मैं क्षमा नहीं कर सकता हूँ ।
हाँ प्रभु से क्षमा दिलादूँगा, इतनी सेवा कर सकता हूँ ॥

अंगद की यह बात सुन, होकर खूब उदास ।
जीते जी रावण मरा गिरा मंच के पास ॥

विकलांग, विवर्ण विकल, विह्वल, व्याकुल, विचलित, बलवान हुआ ॥
लज्जा के नद में डूब गया पानी पानी अभिमान हुआ ॥
अङ्गद बोला "हैं यह क्या ? चित को सुस्थिर श्रीमान करें !
मैं मित्र-पुत्र हूँ महाराज, त्रुटियों पर आप न ध्यान करें ॥
रे जाओ, सत्वर ही कोई—मित्रों का नाम शीघ्र लाओ ।
राजा पर प्रेत सवार हुआ, स्याना ही कोई बुलवाओ ॥

क्रूर हास्य सुन कीश का जला जल गया और ।
आँख बदलकर कहा—"सुन धूर्तों के सिरमौर ॥
जा हटजा भाग यहाँ से जा, अन्यथा बुरा फल पाएगा ।
मैं अब तलवार चलाऊँगा, जो तू फिर जुबाँ चलाएगा ॥
उन तपसी बच्चों से कहदे तत्पर हूँ मैं रण करने को ।
वे उल्टे पैरों घर जायें क्यों आये कटने मरने को ?"

अङ्गद बोले—"धन्य है, हे उत्तर अनुकूल ।
मुँह से लंकानाथ के—बरसे हैं अब फूल ॥
श्रीमहाराज ! नाराज न हों मैं रामादल को जाता हूँ ।
अन्तिम प्रार्थना और भी है जाते जाते समझाता हूँ—
यदि रघुराई की शरण गए तो जीते जी तर जाओगे ।
अन्यथा अकाल मृत्यु होगी, बेमौत स्वयं मर जाओगे ॥
जिस तन पर है अभिमान तुम्हें वह एक दिवस छुट जाएगा ।
बस, अन्त बसन्तकाल का है रूला उपवन लुट जाएगा ॥
जो मट्टी है, मट्टी ही है बतलाओ वह मूरत कैसी ?
जो एक रंग में रहे नहीं उसकी रंगत रंगत कैसी ?
जो वस्तु सर्वदा मिथ्या है, उसमें अनुराग बढ़ाना क्या ?
जल जाय ग्रीष्म में जो बिरवा—उसको जल से सिंचवाना क्या ?
सर्वदा रहे जो साथ नहीं, उसकी कुछ काल सन्धि ही क्या ?
जिन पुष्पों को मुर्झाना है, उनकी मादक सुगन्धि ही क्या ?
है धूलि-रचित जो धूलि-काय, फिर उसे धूलि में जाना है ?
खोजना धूलि में फिर उसका बस केवल धूलि उड़ाना है ॥
इसलिए उठो, सत् साधन को, छोड़ो सौन्दर्य उपासन को ।
है मार्ग भक्ति का यही ठीक निर्मल कर डालो निज मन को ॥
वासना बढ़ाते हैं जितनी उतनी यह डायन बढ़ती है ।
नागिन को जितना दूध मिले, उतना ही गरल उगलती है ॥
इस कारण तजकर राज्य लोभ—आनन्दधाम में जाओ तुम ।
सच्चा आराम चाहते हो—तो राम—नाम में आओ तुम ॥
जो अनदाता को भूल गया, रोता है आठों याम वही ।
परिणाम जानते हो सब कुछ फिर भी करते हो काम वही ॥

यह धरा धाम धन-धान्य सभी-जाएँगे रावण साथ नहीं ।
है यही समय यदि निकल गया तो फिर आएगा हाथ नहीं ॥
जग में जो सोते हैं उसको-हम 'राधेश्याम' जगाएँगे ।
तू माने चाहे मत माने हम तो तुझको समझाएँगे ॥

❀ गाना ❀

कैसो बैठो है आलस में तो पै राम कहो न जाय ।
भोर भयो मल मल मुह धोयो, दिन चढ़ते ही उदर टटोयो !
बातन बातन सब दिन खोयो, साँझ भई पलका पर सोयो !
सोबत सोबत उमर सिरानी, काल शीस मँडराय ॥ कैसो० ॥ १ ॥
लख चौरासी में भरमाई, बड़े भाग्य नर—देही पाई ।
अबकी करियो खरी कमाई, भव सागर से तरियो भाई ॥
'राधेश्याम' जनम फिर ऐसो—बार-बार नहीं आय ॥ कैसो० ॥ २ ॥

—०—

इस प्रकार चेतावनी—देकर बारम्बार ।
सन्ध्या जब होने लगी लौटे बालिकुमार ॥
दशकन्धर निज गृह-गया-हो अत्यन्त उदास ।
रामदूत भी आगए इधर राम के पास ॥
अङ्गद को आता हुआ देख रघुराज उठे सम्मान किया ।
तब शीस नवाकर कपिवर ने सारा संवाद बखान किया ॥
फिर उन मुकुटों की कथा चली, घण्टों कपिदल में हँसी रही ।
आधी रजनी तक अंगद को, घेरे बानर-मण्डली रही ॥
तब जाम्बुवन्त बोले-"अंगद अब जाकर कुछ विश्राम करो ।
तुम भी अब श्रोताओं समेत, हरिकीर्तन 'राधेश्याम' करो ॥"

—ॐ इति ॐ—

# • श्रीराम-कथा •

संख्या—१७

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है

( लङ्का-काण्ड )

लेखक—
नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तनकलानिधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न
पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—

उन्हत्तरवाँ संस्करण ] सन् १९८२ [ मूल्य १)

## प्रार्थना

पुकारा जिसने, सुनी उसकी ही बजरंगबली ।
हो अपनी बात के ऐसे धनी बजरंगबली ॥
कपीश, कीश, सबों ने यह कई बार कहा ।
तुम्हीं ने दी है हमें जिन्दगी बजरंगबली ॥
पड़े थे प्राण लषणलाल के जब संकट में ।
तुम्हीं तो लाए थे सञ्जीवनी बजरंगबली ॥
सिया को और भरत को तुम्हीं ने रक्खा था ।
जब उनके प्राण पै आके पड़ी बजरंगबली ॥
कहा था एक समय आनको —जीवन ने भी —
तुम्हारे आज से हम हैं ऋणी, बजरंगबली ॥
तुम्हारे आसरे निर्भय तुम्हारा "बजरंगबली" ।
तुम्हारे हाथ में जय है, जयी बजरंगबली ॥

# कथा प्रारम्भ

अङ्गद-द्वारा जब सुना लङ्का का सब हाल ।
बोल उठे सुग्रीव से सीतापति तत्काल—

लाचार हो गया रघुवंशी रघुकुल का गौरव रखना है ।
मदमत्त हुआ है लङ्कापति इसका फल उसको चखना है ॥
पड़ती है चोट मनुजता पर शोणित की नदियाँ बहने से ।
पर आती है कायरता भी—चुपचाप बराबर रहने से ॥
असुरों का रक्त उछलता है अपना ही नाश कराने को ।
क्षत्री की भुजा फड़कती है पृथ्वी का भार हटाने को ॥
धरती अधर्म की—खूनों से जब, खूब सींच दी जाती है ।
तब शान्तसृष्टि रचकर दुनिया अपना सौन्दर्य दिखाती है ॥
परिवर्तनशील जगत् है—जब तो संघर्षण होना ही है ।
राघव अब रोक नहीं सकता—लङ्का में रण होना ही है ॥
इस आर्य भूमि की सीता हर लंकापति चैन न पाएगा ।
किष्किन्धा का यह कपिदल ही सोने की लङ्का ढाएगा ॥
इसलिए न्याय के नाते से इस आर्य देश के नाते से ।
अपने कर्तव्य के नाते से, 'सीता संदेश' के नाते से ॥
कह कहकर हर हर 'महादेव' आगे को बढ़ जाओ वीरो !
शंका को हटा, बजा डंका, लङ्का पर चढ़ जाओ वीरो ॥

## * गाना *

जो कर्मशील है जिसका स्वच्छ हृदय है ।
कहते हैं वेद-और शास्त्र उसी की जय है ॥
उसने स्वधर्म पर अपने रण ठाना है !
जिसने स्वजाति का मूल तत्व जाना है ॥
जिसने स्वदेश का गौरव पहचाना है ।
जो स्वाभिमान के कारण दीवाना है ॥
जो बना न्याय—दीपक का परवाना है ।
जो सत् पर मर मिटने को मर्दाना है ॥
रणवीर वही है—कहीं न उसको भय है ।
कहते हैं वेद-और शास्त्र उसी की जय है ॥

—( ० )—

आज्ञा सुन—कपिराज ने यूथप लिए पुकार ।
चार विभागों में किया वानर-कटक तैयार ॥
धाए लङ्का की तरफ़ कपि सब 'कह जय राम' ।
चारों द्वारों पर छिड़ा-प्रबल प्रलय संग्राम ॥
पश्चिम फाटक पर डटे-अङ्गदादि हनुमन्त ।
भीषण पाद प्रहार कर तोड़ा द्वार तुरन्त ॥
अब तो निश्चर-सैन्य भी धाई कपिदल ओर ।
वर्षा में जैसे घिरें—उमड़—घुमड़ घन घोर ॥
बिजली की नाईं बढ़े बानर भी तत्काल ।
एक-एक से भिड़ गए—कर किल्कार कराल ॥

ढक्क ढोल और शंखों के स्वर—धरती दहलाए देते थे ।
बलवानों के गर्जन तर्जन आकाश हिलाए देते थे ॥
'झन-झन' ध्वनियों से एक ओर खड्गादिक शस्त्र उछलते थे ।
दूसरी ओर खट-खट स्वर से गिरि-खण्ड मुष्टिके चलते थे ॥

जब और द्वार भी टूटे तो—रिपु सेना रोष समेत उठी !
चौगुनी शक्ति से रणचण्डी—संग्राम-खेत में चेत उठी ॥
रण-रङ्गस्थल में मतवाले-रजनीचर कीश नाच उट्ठे ।
लाशों पर लाशें लोट उठीं-शीशों पर शीश नाच उट्ठे ॥
आशा से अधिक लड़े वानर-उन रजनीचर बलवन्तों से ।
शस्त्रों की धार हार गई—मुष्टकों, नखों मे, दन्तों से ॥
कट-कटकर जब निशचर-सेना, उस काल समर में मरती थी ।
अन्याय न्याय का तब निर्णय पृथ्वी की लाली करती थी ॥
छोटे छोटे वनरों द्वारा—होगई पराजय खल-दल की ।
जग ने अधर्म की छाती पर अवलोकी जीत-धर्म-बल की ॥

कई दिवस विजयी रहा-कपिदल सभी प्रकार-
तब असुरों से असुरपति बोला यूँ ललकार ॥

"धिक्कार तुम्हारे शस्त्रों पर, लम्बे चौड़े आकारों पर ।
जो दस-दस बीस-बीस वानर-कर जाएँ काम हजारों पर ॥
आराम पसन्दो, आलसियो, क्यों दूध लजाते हो अपना ?
लङ्का विदेशियों को देकर अस्तित्व मिटाते हो अपना ?
जी जान लड़ाकर रखना है-इस जन्मभूमि के वैभव को ।
मुझसे भी बढ़ा-चढ़ा समझो लङ्कानगरी के गौरव को ॥
तुम वह हो जिनसे सुरमण्डल इस दशकन्धर ने जीता है ।
तुम वह हो यह लङ्काधीश्वर, जिनके पौरुष से जीता है ॥
जिसका राजा है स्वर्गजीत, कैलास उठाने वाला हो ।
जिसके नृप ने-बन्दीगृह में यमराज बन्द कर डाला हो ॥
उसके सहचर, उसके अनुचर, वनरों से पिटें जमाने में ।
तो सचमुच लाख-लाख लानत, वीरों की जाति कहाने में !!"

रावण की ललकार ने कर दिखलाया काम ।
खलदल ने अगले दिवस किया घोर संग्राम ॥
किन्तु वहाँ तो युद्ध था, पाप-पुण्य के बीच ।
लड़ सकते थे अब तलक-पवित्रता से नीच ?
अवनि, अकम्पन आदि का जूझ गया समुदाय !
सोये जब रण भूमि में वज्रदन्त अतिकाय ॥
तब लङ्का के नाथ से ले आज्ञा वरदान ।
चला समर के वास्ते—मेघनाद बलवान ॥
लङ्का में सचमुच बड़ी शक्ति इस मेघनाद योद्धा की थी ।
यह सेना का सञ्चालक था, युवराज इसी की पदवी थी ॥
जीता था इसने इन्द्रलोक, यह इन्द्रजीत कहलाता था ।
सब बेटों से प्यारा बेटा, रावण का समझा जाता था ॥
पत्नी थी इसकी सुलोचना, जो सती जगत् ने मानी थी ।
यह भी पत्नीव्रत रखता था, महलों में और न रानी थी ॥
जिस समय नारि ने विदा किया पति को जयमाला पहराके ।
कह उठी सतीतो 'सत के बल से आओगे आज विजय पाके ॥
मच गया तहलका उसी समय, उन शब्दों से सुरमण्डल में ।
सब गुप्त शक्तियाँ व्याकुल थीं, क्या होगा आज रणस्थल में ॥
हे विधना दयादृष्टि रखना. सम्मुख उत्पात दिखाता है ।
सतवन्ती का सतबल लेकर घननाद युद्ध में जाता है ॥"
जितने भी व्रत हैं उन सब में ऊँचा है व्रत पतिव्रत का ।
संसार मानता है लोहा—सतवन्ती के सच्चे सत् का ॥
सत् के भय से जब जल, जङ्गल आकाश धरणि कँपकँपा उठे ।
तब देख प्रकृति के गुप्त भेद भगवान तनिक मुस्करा उठे ॥

उसी समय संग्राम में—आ पहुँचा घननाद ।
वानर-सेना में तुरत व्यापा विषम विषाद ॥
बल से बल से या कौशल से—लड़ता था वह योद्धा रण में ।
छुप जाता कभी प्रकट होता, दिन करता, कभी निसारण में ॥
आकाशमार्ग पर जा-जाकर हड्डियाँ धूल बरसाता था ।
तक-तककर वीर वानरों पै नाना विधि तीर चलाता था ॥
लड़ते-लड़ते जब चूर हुई—तब डोल उठी वानर-सेना ।
"रघुकुल के नाथ दुहाई है—यह बोल उठी वानर-सेना ॥
देखा जब-रणभूमि में-वानर हैं लाचार ।
आज्ञा ले रघुनाथ की—लषण हुए तैयार ॥
जटाजूट को बाँधकर, धनुष-बाण ले हाथ ।
युद्धस्थल में आगए—शीघ्र उर्मिला नाथ ॥
आते ही बलवीर ने रण में किया प्रकाश ।
एक बाण में असुर की माया करदी नाश ॥
मेघनाद कहने लगा—सम्मुख इन्हें निहार----
"ओहो ? बच्चे भी हुए---रण को अब तैयार ?
यह युद्धस्थल वीरों का है खिलवाड़ नहीं है बच्चों का ।
धारें हैं यहाँ कृपाणों की, बाज़ार नहीं मिष्ठानों का ॥
यह शूर्पणखा की नाक नहीं, पीछा न बालि वानर का है ।
यह नहीं शिकार श्रवण का है, लोहू यह लंकेश्वर का है ॥
जिन दाँतों का भूखा न दूध दुख होता उन्हें तोड़ने में ।
इसलिए लौट जाओ घर को खुश है घननाद छोड़ने में ॥
अन्यथा ताड़का-वधवाला अभिमान चूर्ण हो जाएगा ।
खरदूषण-त्रिशिरा के वध का-प्रतिघात पूर्ण हो जाएगा ॥

लषणलाल कहने लगे—"वाह बकैया वाह !
बुरा चोर की बात का—नहीं मानते शाह !
लंका पर रघुकुल की कमान इस कारण आकर कड़की है—
ऋषियों के यज्ञों की ज्वाला बदला लेने को भड़की है ॥
हाँ हाँ प्रतिघात आज होगा, इन्द्रासन वाले पापों का !
सुरमण्डल के—मुनिमण्डल के—गोमण्डल के सन्तापों का ॥
अपनी प्रतिहिंसा की पीड़ा, अब शीघ्र मिटाएगी पृथ्वी ।
असुरों के ताजे लोहू से—जी भरकर न्हाएगी पृथ्वी ॥
इसलिए सँभल जा इन्द्रजीत, यह इन्द्रियजीत बढ़ रहा है ।
क्षत्रिय के कालजीत धनु पै शायक जगजीत चढ़ रहा है ॥
वह नहीं कहीं दब सकता है जो बल रखता है मुष्टों का ।
रघुवंश आन का पूरा है कर देगा चूरा दुष्टों का ॥

लषणलाल के बैन सुन हुआ इन्द्रजीत लाल ।
आपस में अब भिड़ गए दोनों वीर विशाल ॥

धन्वा पर धन्वा खड़क उठे बाणों परबाण बोल उठ्ठे ।
वीरों का बाँका युद्ध देख पृथ्वी पाताल डोल उठ्ठे ॥
छोड़ा जब रिपु ने मेघबाण, तब इधर समीर बाण छोड़ा ।
वह लगा छोड़ने अग्निबाण लक्ष्मण ने नीर बाण छोड़ा ॥
नाना प्रकार की चतुराई, दशकन्धर-तनय दिखाता था ।
कौशल किशोर के कौशल से आघात व्यर्थ ही जाता था ॥
सब भाँति युद्ध में इन्द्रजीत तब हारा साहसहीन हुआ ।
उर्मिलानाथ के बाणों से मूर्च्छित हो होकर दीन हुआ ॥
तब लगा सोचने—"क्या करिए ! यह तो सामान प्रलय का है ?
लक्ष्मण साधारण मनुज नहीं सचमुच अवतार विजय का है ॥

शेष रहा था पास में-उसके 'शक्ति प्रहार'।
वह ही लेकर, उछलकर, बोला यूँ ललकार॥
अब तक मैं खिलाता था, तुमको अब खा जाने की बारी है।
इस शक्ति बाण का रूप धार-आ पहुँची मृत्यु तुम्हारी है॥
यह ब्रह्म शक्ति है ब्रह्मा की जो देवलोक से पाई है।
जिस समय इन्द्र को जीता था-उस समय हाथ में आई है॥
इसका मारा बेसुध होता, दिन उगते प्राण गँवाता है।
ज्योंही यह तन पर पड़ती है तन मृतक-तुल्य हो जाता है॥
इसलिए सँभल ओ रघुवंशी, तू आज न बचने पाएगा।
यह इन्द्रजीत भूमण्डल पर अब लक्ष्मणजीत कहलाएगा॥"
हँसकर लक्ष्मण ने कहा-"इस मद पर धिक्कार?
बाण गए, मुग्दर गया, गई गदा तलवार—
जो भी हथियार तुम्हारे थे—उन सबने हारी मानी है।
जब 'शस्त्रयुद्ध' में हार गए तो 'ब्रह्मयुद्ध' की ठानी है॥
कितने भी आज पतित हो तुम, पर ब्राह्मण-वंश तुम्हारा है।
यह 'ब्रह्मशक्ति'का आदर है जिससे सर झुका हमारा है॥
अन्यथा तुम्हारी ताक़त को हम मट्टी धूल और करते।
होता न प्रश्न ब्राह्मणपन का तो चकनाचूर और करते॥
क्या चिन्ता ब्रह्मफाँस—द्वारा यह क्षत्री हारा जाता है।
फिर चमकेगा कुछ घड़ियों को अब चन्द्रग्रहण में आता है॥
यह कह छाती को आगे कर सुख से वह महाप्रहार सहा।
अपने सङ्कट पर ध्यान न दे, उस ब्रह्मशक्ति का वार सहा॥
बोल उठीं संसार की गुप्त शक्तियाँ 'धन्य'?
रण में यह ब्रह्मण्यता? नमो देव ब्रह्मण्य॥"

समरभूमि में जब गिरे होकर लषण उदास ।
हर्ष नाद कर आगया मेघनाद तब पास ॥
सोचा—"ऐसे ही उठा इन्हें, ले जाऊँ सम्मुख रावण के ।
अपने पहले रण का यह फल पहुँचाऊँ सम्मुख रावण के ॥
पर ब्रह्मशक्ति थी और बात कुछ खेल न उन्हें उठाना था ।
शेषावतार की महिमा को अब तक न असुर ने जाना था ॥
एड़ी से लेकर चोटी तक सारा अपना बल तोल उठा ।
सहस्रानन जब उठ सके नहीं तो मुँह उतरा पग डोल उठा ॥
इतने ही में–उस जगह आँधीवेग समान ।
रामादल से आगया—वानर एक महान ॥
मूर्च्छित पड़े शरीर को सादर नाकर शीश ।
दोनों हाथों से उठा चला तुरत वह कीश ॥
गया राम की ओर जब यह योद्धा वह वीर ।
पीछे पीछे चल दिया–सब कपि-कटक अधीर ॥
अब निश्चर की आँख ने भेद लिया पहचान ।
लक्ष्मण जी को ले गए हाथों पर हनुमान ॥
गिरे लषण की देह पर व्याकुल हो श्रीराम ।
बानर-मण्डल में मचा उसी समय कुहराम ॥
कहते थे बड़े–बड़े योद्धा–'हा विधना' ! क्या उत्पात हुआ ।
रघुकुल पर उल्कापात हुआ ! कपिदल पर वज्राघात हुआ ॥
जब लषण नहीं, तब राम कहाँ ? जब राम नहीं तो विजय कहाँ ?
जब विजय नहीं तो सिया कहाँ ? जब सिया नहीं शुभ समय कहाँ ?
इनका तो रण सीता पर था लङ्का पर था उद्देश लिए ।
अपना रण परमारथ पर था, साहस पर था आदेश लिए ॥

था इससे अधिक पक्ष हमको लङ्का पर जय पा जाने का ।
जब सहायता को साथ हुए तो पूरा कार्य कराने का ॥
संसार कहेगा बनरों ने, बन में बहकाए रघुवंशी ।
बनरे तो बन को भाग गए—सब कुछ खो आए रघुवंशी ॥
धिक्कार हमारे जीवन पर—जो नाम धराएँ अपना हम ।
अच्छा है डूबें सागर में, अस्तित्व मिटाएँ अपना हम ॥

कहा विभीषण ने तभी—रोको हाहाकार ।
अन्त समय तक भी चतुर करते हैं उपचार ॥

लङ्का में एक सुषेण वैद्य—विख्यात नाम का है अपने ।
यह औषध पूर्ण जानता है, सब भाँति काम का है अपने ॥
मेरा जाना तो ठीक नहीं—जाकर अपने में द्विविधा है ।
जो लङ्का से कुछ परिचित हो वह ही उसको ला सकता है ॥

"मैं लाता हूँ" इस तरह, बोल उठे हनुमान ।
तभी विभीषण ने दिया सारा पता निशान ॥
रघुराई का ध्यान धर चले बली हनुमन्त ।
शय्या-सहित सुषेण को लाए वहीं तुरन्त ॥

जागा सुषेण रामादल में देखा सम्मुख रघुराई हैं ।
छोटे भाई को गोद लिए व्याकुल वे जेठे भाई हैं ॥
मनमोहन श्याम सलौना मुख इस समय आँसुओं से तर है॥
मानो पानी से भरा मेघ-झर लगा रहा पृथ्वी पर है ॥

सम्मुख देख सुषेण को बोले कौशलराय—
"वैद्यराज अति शीघ्र ही कुछ कीजिए उपाय ॥
यह सुन कहे सुषेण ने—मर्म भरे कुछ बैन—
"एक बात का दीजिए—उत्तर राजिवनैन ॥

मैं वैद्य दशानन के घर का, किस तरह आपका काम करूँ ?
अनुचित होगा यदि बैरी को लङ्कापति के आराम करूँ ॥
जिसमें प्रत्यक्ष बुराई है—कैसे वह कर्म किया जाए ?
हे राम, आज्ञा देते हो ? इस समय अधर्म किया जाए ?"

यह सुनते ही चौंककर बोल उठे रघुराय—
"धर्म छोड़ने की कभी राम न देगा राय ॥

जिस धर्महेतु निज राज्य गया श्रीपितृदेव का मरण हुआ !
जिस धर्महेतु प्रिय भरत छुटा, सीता प्यारी का हरण हुआ ॥
उस धर्म, सत्य पर लक्ष्मण भी यदि मरजाए तो मर जाए ।
आवाज यही होगी अपनी—हाँ, धर्म नहीं जाने पाए ॥

## ※ गाना ※

हर चीज इस जगत् की कुर्बान धर्म पर है ।
तन और सम्पदा क्या जो जान धर्म पर है ॥
भंगी के घर बिके थे, पुरखा हमारे जाकर ।
रघुकुल की सर्वदा से सन्तान धर्म पर है ॥
ब्रह्मास्त्र-द्वारा भाई मूर्च्छित हुआ तो क्या है ।
उसकी कमान अब भी बलवान धर्म पर है ॥
अवसर अगर मिला तो दिखलाएगा यह राघव ।
भाई सहित—स्वयं भी बलिदान धर्म पर है ॥"

—※०※—

इस उदर वक्तव्य से, वैद्य होगया शान्त ?
चरणों पर गिरकर कहा—जय-जय सीताकान्त ?

प्रभु सचमुच हैं धर्मावतार, मैं दर्शन पाकर धन्य हुआ ।
मेरा जड़ जीवन जड़ शरीर, इन शब्दों से चैतन्य हुआ ॥

हे नाथ, धर्म चर्चा की थी—केवल इस समय परीक्षा को ।
अन्यथा, मात्र तो आया है-करने स्वामी की सेवा को ॥
लङ्का में रहकर भी सुषेण है नहीं दशानन के दल का ।
सहकारी है सहयोगी है सब समय विभीषण-मण्डल का ॥"

बोले नाड़ी देख फिर—तुरत वैद्यकुलरत्न—
"गहरी, भारी चोट है, है अति दूर प्रयत्न ॥
सूरज उगने से पहले ही मिल जाए जड़ी तो जीवन है ।
अन्यथा, असम्भव है उठना विष ने निर्जीव किया तन है ॥
अत्यन्त दूर है औषध भी, आ सकती नहीं रात ही में ।
ऐसा है कौन यहाँ योद्धा—जो लाए यहीं रात ही में ?"

"ला सकता है दास यह, प्रभु पद की है आन ।
आ कूदे तत्क्षण वहीं-यह कहते हनुमान ॥
"भूतल में हो, या नभ में हो, पर्वत में हो या सागर में ।
लाएगा दास अभी उसको चाहे हो ब्रह्मा के घर में ॥
बतलाओ उसका रूप-रङ्ग, किस ठौर, हाथ वह आएगी ?
रघुराई अगर सहाई हैं तो रात रहे आजाएगी ॥"

इस साहस पर वैद्य भी बोले-कर उल्लास—
"जय उनकी दासी सदा-जिनके ऐसे दास ॥
अच्छा, बलवीर बढ़ो आगे, तुम ले आओगे औषध वह ।
उत्तर में जो द्रोणागिरि है, उस पर पाओगे औषध वह ॥
सञ्जीविनि उसको कहते हैं, ज्वाला की भाँति चमकती है ।
यदि नहीं भोर तक आई वह-तो जान नहीं बच सकती है ॥"

वैद्यराज के साथ ही बोल उठे युवराज ।
"वीर तुम्हारे हाथ है—अब रघुकुल की लाज ॥

कपिपति की तुमने रक्षा की कपियों को तुमने तारा है।
बन में अशोक के तुमने ही सीता का प्राण उबारा है॥
अब जान डालकर लक्ष्मण में राघव को पूर्ण सुखी करना।
जो सदा तुम्हारा ऋणी रहा, उसको फिर आज ऋणी करना॥

## ❀ गाना ❀

बलवीरा, बेगी बूटी लइयो वह जाय।
समय समय पर राम की धरी तुम्हीं ने धीर॥
आज अचानक पड़ी है फिर भारी भीर।
संकट के साथी दो यह पीर मिटाय॥
लक्ष्मणलाल की देह में व्यापा विष भरपूर।
भरत भ्रात हैं अवध में अवधपुरी अति दूर॥
ऐसे में भैया, तुम्हीं करोगे सहाय॥
गोद सुमित्रा मात की भरी रहे कपिनाथ।
है सुहाग उर्मिला का आज तुम्हारे हाथ॥
हे जीवनदाता, सञ्जीवनि दो लाय॥

—: o :—

इस प्रकार जब राम ने कहे वचन गम्भीर।
शीश नवा हनुमत् चले कह—जय श्री रघुवीर॥
कल्पना देर कर जाती है पर देर नहीं की जङ्घी ने।
मारुत से अधिक चाल पकड़ी उस मारुतसुत बजरङ्गी ने॥
जो बल सूरज पर झपटा था, लङ्का को जो झुलसाता था।
वह ही आँधी की तरह आज बूटी लेने को जाता था॥
उधर नहीं निश्चिन्त था लङ्का में दशभाल।
पहुँचाते थे गुप्तचर पल-पल का सब हाल॥
सुना जभी हनुमान् का उसने प्रबल पयान।
अटकाने का मार्ग में कर डाला सामान॥

कालनेमि ने पहुँचकर ऐसा किया उपाय—
महावीर को मार्ग में देर अधिक लग जाय ॥
निशाकाल बीता अगर तो बिगड़ेगा काम ।
फिर तो बूटी भी नहीं कर सकती आराम ॥
चतुर अञ्जनीलाल जब गए चाल यह ताड़ ।
चट लपेट लांगूल से—निश्चर दिया पछाड़ ॥
इस प्रकार उस मार्ग में कालनेमि को मार ।
चले पवनसुत इस तरह करते हुए विचार—
हे सूर्य, ध्यान रखना इतना-संकट अब सूर्यवंश पर है ।
लंका के नीच राहु द्वारा-आघात दिनेश-अंश पर है ॥
इसलिए छुपे रहना तबतक-जबतक न जड़ी पहुँचा दूँ मैं ।
उस समय प्रकट होना भगवन् जब संकट-निशा मिटा दूँ मैं ॥
मेरी सेवा के पहिले यदि—किरणों का चमत्कार होगा—
तो सूर्यवंश में सूर्यदेव, सचमुच ही अन्धकार होगा ॥
आशा है स्वल्प प्रार्थना यह—सच्चे जी से स्वीकारगे ।
आतुर की आर्त अवस्था को करुणा के साथ निहारेंगे ॥
अन्यथा, क्षमा करना दिनकर, अञ्जनीतनय से पाला है ।
बचपन से जान रहे हो तुम, हनुमत् कितना मतवाला है ॥
मुख में तुमको धर रखने का फिर आज क्रूर साधन होगा ।
बन्दी-मोचन तब होगा जब लक्ष्मण का दुख मोचन होगा ॥
पहुँचे द्रोणागिर जभी वीर अञ्जनीलाल ।
देखा सारी बूटियाँ बनी हुई हैं ज्वाल ॥
रावण ने इस जगह भी खेली थी यह चाल ।
भेज विमानों पै सचिव करा दिया गिरि लाल ॥

दीपावलि, तारावलि समान सारा ही शैल दमकता था ।
चक्कर में पड़े वहाँ हनुमत बूटी का पता न चलता था ॥
जितने बलशाली होते हैं, वे अधिक विचार न करते हैं ।
जब आता है आवेश उन्हें तो मनचाहा कर उठते हैं ॥
हनुमत् में भी उट्ठी तरङ्ग सोचा-"छोड़ो इस हुज्जत को ।
देखा-भाली का समय नहीं, ले चलो उठाकर पर्वत को ॥"
यह सोच उठाया वही भाग प्रेरणा मिली जो रह-रहकर ।
बाएँ कर उसको धारण कर, चलदिए 'राम की जय कहकर' ॥

❀ गाना ❀

बानरवर गिरिवर लिए जाय है ।
सुर-मुनि सब हर्षं भुवन सब निरखें ॥
स्वामी का काज सेवक किए जाय है ।
जो भय नहीं लाते वही जय पाते ॥
जगत् को यह शिक्षा दिए जाय है ।

—: • :—

गगनमार्ग से रात्रि में-शैल सहित हनुमन्त ।
चले उत्तराखण्ड से दक्षिण दिशा तुरन्त ॥
तले पड़ा बलधाम के जभी अयोध्याधाम ।
परवश ही करना पड़ा इन्हें वहाँ विश्राम ॥

घटना यह थी रण शक्ति-लगी जब लषणलाल जी के उर में ।
देखा तब मात सुमित्रा ने दुःस्वप्न यहाँ कौशलपुर में ॥
तत्काल छोड़कर नन्दिग्राम आगए भरत सुन दुख उनका ।
प्रारम्भ कर दिया शान्तियज्ञ परिणाम सोचकर अशकुन का ॥
इतने में आँधी के समान—अञ्जनिसुत आया ऊपर को ।
उत्पात समझकर भरत उठे—कुशबाण चलाया ऊपर को ॥

एक बात है इस जगह-कह देने की खास—
शैल लिए जा रहे थे जब रघुवर के दास—
तब सोचा-"अब लक्ष्मण अवश्य जीवित हो जायँगे पल में ।
मैं ठीक समय पर औषध को पहुँचा दूँगा रामादल में ॥
'मैं' का इतना सा ही अंकुर-जिस समय उगा इनके मन में ।
त्योंही आ लगा गर्वहारी वह तीर भरत जी का तन में ॥
गिरगए भूमि पर, हाथ टेक, आहत मूर्च्छित होकर दुख से ।
वह नाम मात्र का मद उतरा, 'श्रीराम-नाम' निकला मुख से ॥
पड़ा भरत के कान में ज्योंही यह प्रिय नाम ।
दौड़े बोले-"कौन है जो पुकारता 'राम' ॥
इस महामन्त्र की महामधुर आवाज लगाई है किसने ?
मेरी रग-रग में, नस-नस में बिजली दौड़ाई है किसने ?
जिसने यह नाम पुकारा है-वह सचमुच है उनके प्यारों में ।
इतना रस इस पुकार में है जो नहीं हजार पुकारों में ॥
बोल-बोल हे बोलने वाले, फिर वह बोल ।
फिर भरदे-उस बोल से मेरे मन का डोल ॥
पृथ्वी, आकाश, पवन, पानी, सब में गुञ्जार भरी तूने ।
इस शान्त प्रकृति के कण-कण में मीठी झनकार भरी तूने ॥
जड़ भी चेतन होते जिससे वह सुधा सलिल बरसाया है ।
इस तार-तार में त्रिभुवन के-तेरा सङ्गीत समाया है ॥
तू वह है जिसने जीवन में पाया है अमृत-सरोवर को ।
मैं वह हूँ जो 'पिउ-पिउ' करके देखा करता हूँ ऊपर को ॥
इसलिए तुही दे कुछ अपने हिस्से में से दीवाने को ।
तब तू भी, मैं भी गाऊँ उस मीठे मीठे गाने को ॥"

इन्हीं विचारों में भरत पहुँचे कपि के पास ।
देखा मूर्च्छित पड़ा है वह राघव का दास ॥
बहुतेरा भरत जगाते थे—पर नहीं जागता था वीरा ।
क्या जानें कैसी मूर्च्छा थी ? जो नहीं त्यागता था वीरा ॥
नाड़ी देखी तो प्रकट हुआ—है तो पर प्राण त्रास में हैं ।
श्रीराम-नाम की उच्छ्वासें आती प्रत्येक श्वास में हैं ॥
यह भी देखा तन आहत है, शायक बिंध रहा कुशा का है ।
पर बाँया हाथ नहीं लचका उस पर गिरि अबतक रक्खा है ॥
यह दशा देखकर कपिवर की,—श्रीभरतलाल भी डोल उठे ।
पहले खींचा मन्त्रों का शर, फिर प्रकट इस तरह बोल उठे ॥

हा ! मुझसे ही हुआ यह सज्जन का अपकार ?
मुझ पर मेरे बाण पर—बार-बार धिक्कार ॥"
फिर बोले—"यदि राम का हूँ मैं सच्चा दास ।
है यदि मेरे हृदय में अटल प्रेम विश्वास ॥
तो तुम जागो वीरवर, तुम्हें उन्हीं की आन ।
जिनके पावन नाम से सोए हो बलवान ॥"
इन शब्दों में था भरा महासुधा का सार ।
उठ बैठे 'जय राम' कह—श्रीअञ्जनीकुमार ॥
धोखा खाया भक्त ने देख साँवरा रूप ।
वही सलोना, सोहना, कोमल अङ्ग अनूप ॥
सौन्दर्य वही, लावण्य वही, जिस पर त्रिभुवन बलि जाते हैं ।
हैं नयन वही, चितवन् वह ही, जिससे रतिनाथ लजाते हैं ॥
वह ही मटियाले जटाजूट मतवाले घूँघर वाले हैं ।
जो खुल जाएँ तो सम्बुल हैं, बल खा जाएँ तो काले हैं ॥

प्रेम-मग्न हो दास ने झुका दिया निज माथ ।
बोले-"मैं आया कहाँ ? आप कहाँ हैं नाथ ?"
मुस्काकर कहने लगे तब रघुवर के भ्रात—
"हो तुम कौशलदेश में, निकट भरत के तात !"
ओह ? भरत जी खड़े हैं मेरे सम्मुख आज !"
यह कहकर फिर प्रेम से चरण पड़े कपिराज—
सुनता था परम पवित्र-नाम जिनका इन श्रवणों के द्वारा ।
प्यासा था जिनके दर्शन का इन लोभी नयनों के द्वारा ॥
मेरे आराध्यदेव के जो आराध्यदेव हैं इस जग में ।
मैं बड़भागी हूँ आन पड़ा उनके ही प्रिय पावन पग में ॥"

इन शब्दों के साथ ही प्रकट किया निज नाम ।
कह डाली संक्षेप में रण की कथा तमाम ॥
सुनी जिस समय भरत ने लक्ष्मणलाल की पीर ।
धीर हृदय भी हो गया-क्षण के लिए अधीर ॥

रोए ? हाँ रोए बहुत भरत, पर नहीं लक्ष्मण के दुःखों से ।
था घाव और ही छाती में है-जो हरियायी इन चोटों से ॥
बोले-"बड़भागी है लक्ष्मण, जो रहता उन चरणों में है ।
चरणों में ही अब तलक जिया, अब मरता उन चरणों में है ॥
पर भरत अभागा है अब तक प्रभु के कुछ काम न आया है ।
खाने सोने ही में इसने—अपना सब जन्म गँवाया है ॥
हे विधना यह ही करना था तो क्यों उपजाया था तूने ?
क्या इसी मृतक से जीवन को जग में जन्माया था तूने ?
पैदा ही यदि करना था तो लक्ष्मण का भाग्य दिया होता ।
अन्यथा अभागे के बदले पत्थर उत्पन्न किया होता ॥

धिक्कार इस तरह जीने पर, जिस जीने में कुछ सार नहीं ।
ठाकुरजी की प्रतिमा होते, पूजा का है अधिकार नहीं ॥"

## ❀ गाना ❀

उसी का जीवन है धन्य जग में—जो सेवाव्रत में लगा हुआ है ।
सिखाया दुनिया को धर्म उसने—जो धर्म पै खुद मिटा हुआ है ॥
उसी का है तेज नभ के ऊपर उसी का तप भूमि के है भीतर ।
सदा जो परमार्थ की तपन में सुवर्ण जैसा तपा हुआ है ॥
जिया है जो दूसरों की खातिर, मरा है जो दूसरों की खातिर ।
अमर सदा है वह इस जगत् में जगत् उसी पर खड़ा हुआ है ॥
जहाँ के तख्तों पर नाम उसका—सदैव स्वर्णाक्षरों में चमका ।
असत् पै जिसने कदम न रक्खा, सदा जो सत् पर डटा हुआ है ॥
उसी ने पाया है इस सुधा को, वही विधाता है देवता को ।
मिटाई है जिसने अपनी रंगत, अमिट के रंग में रँगा हुआ है ॥
समान है हर्ष-शोक उसको, हैं एक से दोनों लोक उसको ।
लखा के लौ "राधेश्याम" प्रभु में—सदा को जो टहलुआ बना है ॥

—:o:—

मुझको भी कुछ चाकरी—करने दो कपिराय ।
जिससे जाकर-वृन्द में—गणना तो हो जाय ॥
सुनो नाथ के पास में रहने वाले वीर !
तुम्हीं भरत के हृदय की हरे जाउ कुछ पीर ॥
रात ही रात में वीर तुम्हें—बूटी के साथ पहुँचना है ।
जाना है दूर, देह घायल, आकाश-मार्ग पर चलना है ॥
चढ़ जाउ बाण पर तुम मेरे दुर्गम को सुगम बनाऊँगा ।
निशि ही में वहाँ राम-बल से गिरि-सहित तुम्हें पहुँचाऊँगा ॥"
यह कहकर कुशबाण की क्षमा माँग तत्काल ।
खड़े हुए इस कार्य को रघुकुल के लाल ॥

कपि ने सोचा-भेजते-"शर पर भरत उदार ।
निज पराक्रम से ? नहीं, रामकृपा आधार ॥
श्रीभरत-बाण में रामकृपा जब महाशक्ति भर सकती है ।
मेरे घायल शरीर में वह कुछ काम नहीं कर सकती है ?"
जिस समय अनन्य उपासक के यह लहर उठी मन मानस में ॥
भर गए घाव, आगई शक्ति, बिजली सी दौड़ी नस-नस में ॥
बोले-"दो आशीर्वाद प्रभो, जाएगा बाण-समान सचिव ।
श्रीराम कृपा से निशि ही में पहुँचेगा यह हनुमान सचिव ॥
हे स्वामी, देर नहीं अच्छी, अब आज्ञा मुझे दीजिएगा ।
बस विदा, श्रीभरतलाल विदा, दण्डवत् प्रणाम लीजिएगा ॥
यह कहकर मस्तक नवा चले तुरत हनुमान ।
मन ही मन करते हुए भरतलाल का गान—

## * गाना *

—: o :—

"धन्य धन्य इस स्वार्थी जग में भरतलाल जैसा भाई ।
ऐसे ही भाई से इज्जत आर्यदेश ने है पाई ॥
भ्रात-भाव हो जहाँ भरत सा—वहाँ पूर्ण सम्पति है ।
वहीं सुमति है, वहीं सुगति है, वही सदा उन्नति है ॥
हे शान्तिदाता, नमो नमः हे राम भ्राता, नमो नमः ।
अवध के ताता, नमो नमः जगत् के त्राता, नमो नमः ॥
रोम रोम में इस दर्शन से मेरे मोद लहर छाई ।
जन्म कृतार्थ हुआ है मेरा निरखे छोटे रघुराई ॥"

—: o :—

इन्हीं विचारों में मगन आते थे रणजीत ।
आधी के लगभग हुई-रजनी इधर व्यतीत ॥
रह न सके इतने समय-राघवेन्द्र चुपचाप ।
नरलीला हित प्रकट में करने लगे विलाप ॥

"देर हुई, अब तक नहीं आया हनुमत् वीर ।
हाय ! विधाता, किस तरह हृदय धरे यह धीर ?
क्या जाने उस द्रोणागिरि तक जा ही न सका कपिराई हो ?
डूबा हो कहीं राह ही में, योद्धा है लज्जा आई हो ?
यदि लषणलाल के साथ-साथ उसने भी दुनिया छोड़ी है !
तब तो विधना, तूने मेरी दूसरी भुजा भी तोड़ी है ॥
पुत्रादिक सब पालते मुँह देखे की नीति ।
भाई से भाई सदा करता सच्ची प्रीति ॥
कारणवश भाई भाई में चाहे कितनी भी अनबन हो ।
पर विपत् पड़े पर भाई ही देता है साथ एक मन हो ॥
है एक लहू जब दोनों का तो आए क्योंकर जोश नहीं ?
भाई ही-भाई के दुख में रह सकता है खामोश नहीं ॥
मिल जाते हैं विश्व में मित्र, कलत्र, हजार ।
लेकिन मिलता है नहीं भाई बारम्बार ॥
इस भाईचारे को देखो—जब भाई पर दुख आया है !
तो भाई ने युद्धस्थल में पहले निज प्राण गँवाया है ॥
भाई जब मरा, जिया फिर मैं तो लाख-लाख धिक्कार मुझे ।
वह तो बलिहार हो चुका है अब होना है बलिहार मुझे ॥
संसार देख ले अदा किया, हक़ अपना क्योंकर भाई ने ।
आया था काल मुझे लेने ले लिया शीश पर भाई ने ॥
बलिहारी है इस मरने पर, दे डाला जीवन प्यारे को ।
मरने में भी दिखलाया है—भाई ने भाईचारे को ॥
पहले तो मिलना कठिन जग उजियाला भ्रात !
फिर वह भी सौमित्र सा संयम वाला भ्रात !

बनवास मिला था जब मुझको, तब उबल उठा था भाई यह।
भाई की सेवा को पहले तैयार हुआ था भाई यह॥
मैंने तो माँ की आज्ञा से—शाही पोशाक उतारी थी।
पर इसने भ्रात भाव पर ही महलों को ठोकर मारी थी॥
जंगल के काँटे मेरे ही कारण इसने स्वीकारे थे।
मेरे ही सुख को-बन के दुख-इसने मस्तक पर धारे थे॥
सेवक भी था, रक्षक भी था, पालक भी यह ही भ्राता था।
खाने को फल, पीने को जल, हर रोज़ बनों से लाता था॥
आदर्श बना जो औरों को-मिल सकता नहीं भ्रात ऐसा।
ऐ दुनिया, तू ही बतलादे, देखा है कहीं भ्रात ऐसा?
लक्ष्मण से भाई को खोकर, धिक्कार राम के जीने पर।
हे ब्रह्मशक्ति दे छोड़ इसे, आजा अब मेरे सीने पर॥
यह छोटा और बड़ा हूँ मैं, अनुचित इसका मरना पहले।
हे काल, इसे पीछे लेना, मुझको समाप्त करना पहले॥
या यह अच्छा है एक साथ दोनों का प्राण निकल जाए।
भाई-भाई का एक रक्त एक ही चिता पर जल जाए॥"

इतना कह उस देह पर—खाकर गिरे पछाड़।
फिर चौंके, फिर गिरे फिर कहा कलेजा फाड़॥
"तारे फीके पड़ चले बीत चली है रात।
मुझे अकेला छोड़ तुम, कहाँ जा रहे भ्रात?
तुम तो कहते थे सेवा को हरदम तैयार यह भाई है—
अब जब सेवा का समय हुआ तब तुमको निद्रा आई है॥
सेवा यह है युद्धस्थल में रावण का मान घटाना है।
मैंने जो प्रण कर डाला है—वह पूरा तुम्हें कराना है॥

रघुकुल की महिला सीता को-असुरों से शीघ्र छुड़ाना है।
जय-सहित अवधपुर में जाकर माता को मुँह दिखलाना है॥
तुम यदि सोते ही रहे-तो न बनेगा काम।
बिना तुम्हारे करेगा यह सब कैसे राम॥
लंका पै मैं चढ़ आया हूँ हे तात, तुम्हारे ही बल पर।
मेरा जय का सम्पूर्ण भार-है भ्रात तुम्हारे ही बल पर॥
करता है काम और कोई, पर नाम और का चलता है।
जलता तो है रोगन कपड़ा कहते हैं दीपक जलता है॥
एक बात है और भी-एक और भी काज।
भक्त विभीषण को-दिया है लंका का राज॥
है सोच नहीं अब सीता का, दुख नहीं तुम्हारे जाने का।
संकोच नहीं—इस विपदा में अपने भी प्राण गँवाने का॥
कुछ चिन्ता है तो यह है अब पकड़ी है बाँह विभीषण की।
हे भाई, उठकर पार करो यह नौका रघुवर के प्रण की॥
और आरहा ध्यान कुछ-इसी दुख के साथ।
माता ने चलते समय पकड़ाया था हाथ॥
मैं बिना तुम्हारे, हे भैया, किस तरह अवधपुर जाऊँगा?
माँ पूछेगी जब 'लषण कहाँ?' तो क्या कहकर समझाऊँगा?
उस छाती से उस गोदी से ज्वाला भड़भड़ा उठेगी जब—
जलहीन मीन-सी व्याकुल हो मैया तड़पड़ा उठेगी जब—
तो बतलाओ लक्ष्मण भैया कैसे न जलेगा जगत् वहाँ।
बच सकते फिर क्या लपटों से शत्रुहन और श्रीभरत वहाँ?
तुम इस मूर्च्छा में मरते हो सीता मरती है लंका में।
माता-या रहे सहे भ्राता-मरते हैं उधर अयोध्या में॥

इतनों को अगर मारना हो–तो अपने प्राण तजो भैया ।
अन्यथा सबों के जीवन हित–जल्दी से जाग उठो भैया ॥
भाई को खोकर मिला अगर विजय का हार—
तो यह बढ़कर हार से है रण का उपहार ॥
धिक्कार इस तरह लड़ने पर–जिसमें यह पुण्य कमाया है ।
लक्ष्मण से प्यारे भाई को नारी के हेतु गँवाया है ॥
मरने वाले का लाल रुधिर काला जो पड़ता जाता है ।
वह मेरी ही इस करनी के कालेपन को दिखलाता है ॥
दुनिया देखेगी लषण मरा–कर्तव्य-धर्म के रक्षण में ।
पर, राम मरा कायरता से अपने ही भीतर के रण में ॥
यह जाता है ऊँचे सिर से, पर मैं नीचा सिर किए हुए ।
'पत्नी के हित भाई खोया' काला कलङ्क यह लिए हुए ॥"
रग-रग में काँटे चुभे इस विचार के साथ !
मूर्च्छित फिर कुछ समय को हुए अयोध्यानाथ ॥
अबकी जो आँखें खुलीं तो देखी यह बात ।
प्रात-पवन चलने लगा, रही बहुत कम रात ॥
जामवन्त सुग्रीव को बैठाकर निज पास ।
बोल उठे फिर इस तरह हो अत्यन्त उदास ॥
"जब लक्ष्मण ही नहीं तो जीने से क्या काम ?
बन्धुवरो, तुमसे विदा होता अब यह राम ॥
अपने उपकारों के घट को फिर आज और भरते जाना ।
अन्तिम इच्छा इस राघव की इस भाँति पूर्ण करते जाना ॥
इतना करना हम दोनों की छातियाँ मिला देना भाई ।
एक ही वस्त्र में दोनों को कसकर लिपटा देना भाई ॥

यदि चिता बनानी मुश्किल हो—तो जल में यहीं बहा देना ।
जलनिधि की ठण्डी लहरों में दोनों को साथ सुला देना ॥
दोनों के रुधिरों से इतना, लिख देना सागर के तट पर—
'भाई-भाई की यादगार' है इसी सागर के मरघट पर ॥

## ❀ गाना ❀

भाई, कोई मुझे यह बताए ? किसने दुनिया में दुख ऐसे पाए ?
किस पै यूँ वज्र भीषण गिरा है ? किसका यूँ छोटा भाई मरा है ॥ १ ॥
देश से हो विदेशों में आना, युद्ध भी ऐसा भीषण हो ठाना !
किसको दिन देखना यह पड़ा है ! किसका यूँ छोटा भाई मरा है ॥ २ ॥
जो कि बे-बाप का हो बनों में, जिसकी माँ फूट डाले घरों में !
कौन ऐसा अभागा जिया है, किसका यूँ छोटा भाई मरा है ॥ ३ ॥
जिसको गद्दी के बदले कुटी हो ! जिसकी नारी हरी जा चुकी हो ।
ऐसा राजा भला कौनसा है ! किसका यूँ छोटा भाई मरा है ॥ ४ ॥
जिसको माता सगी रो रही हो, जिसके भ्राताओं में बेकली हो !
कोई ऐसा कहीं दीखता है ! किसका यूँ छोटा भाई मरा है ॥ ५ ॥
जिसने पग पै संकट उठाया, सारे जीवन न सुख चैन पाया ।
ऐसा पत्थर का किसका जिया है ! किसका यूँ छोटा भाई मरा है ॥ ६ ॥
अन्त में देखी ऐसी घड़ी हो, लाश भाई की आगे पड़ी हो ।
कौन इतने पै भी जो रहा है ! किसका यूँ छोटा भाई मरा है ॥ ७ ॥

—: ० : —

अति व्याकुल थे जिस समय लीलामय भगवान ।
तभी लालिमा युक्त कुछ दीख पड़ा ईशान ॥
प्रभु ने समझा शोक में—अब न रही कुछ आश ।
अरुणोदय का हो रहा है उस ओर प्रकाश ॥
"प्राणो, तुम भी जाउ अब लषणलाल के साथ ।
यह कहकर गिरने लगे—जब फिर कोशलनाथ ॥

तभी कहा सुग्रीव ने कर कुछ ऊँचा माथ—
"लाली यह ईशान की-कृत्रिम है रघुनाथ !"
जाम्बुवन्त बोला-"अगर नहीं जाल या चाल—
तो इस लाली में चमक रहा-पवन का लाल ॥"
सचमुच इतने में वहाँ आ पहुँचे कपिनाथ—
ज्वाला से जलते हुए शैलखण्ड के साथ ॥
संजीवनी सुषेण ने दी जब मुख में डाल ।
उठे 'राम का नाम' ले लषणलाल तत्काल ॥
अब एक दृश्य पर उस क्षण के, लाखों कपिवृन्द थकित से हैं ।
नारद-शारद भी क्या वरणें जब छवि पर स्वयं चकित से हैं ?
दो भागों में बटने पर भी प्रभु का मिलाप यकरङ्गी था ।
इस पहलू में थे लषणलाल, उस पहलू में बजरङ्गी था ॥
'जय रघुवर' की जब उठी कपिदल में गुञ्जार ।
'जय हनुमत्'-'जय-लषण' तब बोल पड़ा संसार ॥
बजी दुन्दुभी व्योम पर समय समझ अनुकूल ।
सुरगण बरसाने लगे—स्वर्गधाम से फूल ॥

❀ गाना ❀

लक्ष्मण की मूर्च्छा हुई जबकि इस तरह भंग ।
भरतलाल के अवध में फरके दाएँ अंग ॥
है रंगरेलियाँ जय जयकारियाँ सुखी हुआ संसार ।
झुकी हैं डालियाँ, फूली है क्यारियाँ छाई है ऋतु बहार ॥
दूर सब विपत् हुई है, वह वीरभूमि मोदमयी है ।
हँसी है खुशी है खिली है, कली-कली लेके प्यार ॥

—०—

हो कृतज्ञ प्रभु ने किए विदा वैद्य महाराज ।
पहुँचा आया भवन तक सादर कीश समाज ॥

रावण ने जब यह सुना गए लषणजी जाग ।
बोला—"लंकापुरी के सोए हैं अब भाग !
'रण में सोकर जग उठे' अवधेश्वर का भ्रात—
घर में सोता ही रहे लंकेश्वर का भ्रात ?
कुम्भकरण के भवन में पहुँचा तभी अधीर ।
नाना भाँति उपाय कर तुरत जगाया वीर ॥

यह कुम्भकरण महाबली, रावण का छोटा भ्राता था ।
भोजन करना, फिर सो जाना, बस यह ही उसे सुहाता था ॥
कहते हैं छै मासों में वह–बस एक रोज को जगता था ।
कुछ घण्टों ही में लङ्का को–भोजन से चौपट करता था ॥

जागा ज्योंही दैत्य वह विस्मित व्यथित नितान्त ।
रावण ने संक्षेप में—सुना दिया वृत्तान्त ॥

फिर कहा–"तुम्हारे सोने से लङ्का की चाँदी होती है ।
जिसको रानी की पद्वी है, वह ही अब बाँदी होती है ॥
ऐसा भी सोना, क्या सोना ? जीवन सब जाए खाटों में ।
कट जाँय बहिन के नाक कान, तुम पड़े रहो खर्राटों में ॥

कुम्भकरण कहने लगा–"वाह ! भ्रात बलवान ।
परनारी हरकर मुझे सिखलाते हो ज्ञान ?

क्यों गई वहाँ वह शूर्पणखा ? क्या काम भला था जाने का ?
कोई तो कारण होगा ही लड़कों से नाक कटाने का ?
इस बे मतलब के झगड़े में लङ्का की सत्यानाशी है ।
भाई, अब तिथियाँ क्या गिनते, अपनी भी पूरनमासी है ॥"

रावण ने ज्योंहीं सुनी भ्राता की यह बात ।
खूब नशीली वस्तुएँ दे दीं उसी प्रभात ॥

हुआ नशे में जिस समय लङ्का का वह वीर ।
चला युद्ध के वास्ते गर्जन कर गम्भीर ॥
लिखने लायक बात है इसके रण की एक ।
बनता इसका ग्रास था भालु-कीश-समेत ॥
अचरज विशेष था एक और जिस जिसको भी यह खाता था ।
वह नाक कान के रस्ते से बाहर को झट आ जाता था ॥
सारांश यही है डील डौल इस कुम्भकरण का इतना था ।
अङ्गों को छूना क्या, इसके सम्मुख होना भी मरना था ॥
काँप उठा इस समय जब भालु-कीश-समुदाय ।
चाहा लक्ष्मण ने मुझे रण आज्ञा मिल जाय ॥
किन्तु उठे हैं यह अभी पाकर कष्ट अपार ।
यही सोचकर स्वयं प्रभु रण को हुए तैयार ॥
उन कमल-सरीखे हाथों से-जब धन्वा का टंकोर हुआ ।
दुश्मन का भी दिल दहल उठा, वह प्रलयकाल का शोर हुआ !
जब तक कि साँवली सूरत पर वे सुघर जटाएँ बिखरी थीं—
तब तक मानो सब शोभाएँ-उस मुख पर आकर निखरी थीं ॥
बँध गया जभी जूड़ा उनका छवियाँ थीं बँधी साथ ही में ।
मानो अपनी रक्षा के हित वे सब रह गईं साथ ही में ॥
अब उच्च सूर्य ज्योंही दमका आलोक,अलौकिक लपक उठा ।
मुख मण्डल का अवलोक तेज-रण मण्डल सारा झपक उठा ॥
कटि में निषङ्ग कर में कमान, चुटकी में तीर दबाए ये ।
उस रौद्र रूप में भी राघव अद्वितीय छवि से छाए ये ॥
हो गया चकित रजनीचर भी देखा जब उस सुन्दरता को ।
क्षणभर के लिए भूल बैठा अपनी सब युद्ध कुशलता को ॥

बोला-"क्या तुम्हीं अवधपति हो? क्या तुम्हीं सूर्य कुलनन्दन हो?
रावण से रण करने वाले क्या तुम्हीं जानकी—जीवन हो?
यह नीलाम्बुज श्यामल शरीर रण-मध्य उतरने योग्य नहीं।
हे राम तुम्हारी मधुर मूर्ति सचमुच वध करने योग्य नहीं॥

निश्चर के यह बैन सुन, बिहँसे सीतानाथ!
उत्तर में कहने लगे रख धन्वा पर हाथ—

हे कुम्भकरण यों बातों का तूमार न शोभा पाता है।
रण में बातें करने वाला—कायर भयभीत कहाता है॥
लङ्का में अगर वीर हो तुम तो ममता छोड़ो प्राणों की।
लो सँभलो, वर्षा होती है दशरथनन्दन के बाणों की॥"
यह कहकर धन्वा टङ्कोरा, फिर चकित किया बौछारों से।
सारा युद्धस्थल गूँज उठा-"जय राघव" की गुञ्जारों से॥
त्रिपुरासुर के सम्मुख रण में जिस तरह सुशोभित शंकर थे।
त्यों कुम्भकर्ण से लड़ने में देदीप्यमान सीतावर थे॥
प्रभु से रण करते समय असुर इस तरह दिखाई पड़ता है।
मानों शरीर धर अन्धकार उज्जवल प्रकाश से लड़ता है॥
अथवा जैसे काला कलंक निर्मल यह पै झुँझलाता हो।
या यूँ कहिए कलि-कलुष पाप सत् के सुपुण्य पर धाता हो॥

रजनीचर ने शक्तिभर यत्न किए बहु बार।
पहुँच सका रघुनाथ के निकट न किसी प्रकार॥
तब बोला सानन्द वह—"धन्य तुम्हें हे राम।
ऐसा कोमल अङ्ग—फिर यह दुरन्त संग्राम॥

आजानुबाहु का बाण युद्ध बस देखे ही बन आता है।
कब लेते और चढ़ाते हो रिपु नहीं समझ यह पाता है॥

हाँ एक बार, फिर एक बार कौतुक दिखला डालो अपना ।
मैं तुम्हें पकड़ने आता हूँ, तुम बाण चला डालो अपना ॥"
धाया प्रभु की ओर अब मुख फैलाकर वीर ।
देव और बानर सभी भय से हुए अधीर ॥
चिन्ता युत देखा जभी—सुर-बानर-समुदाय ।
कालबाण रिपु पर चला-बिहँसे कुछ रघुराय ॥
उतर गया सारा नशा, लगते ही वह बाण ।
मन ही मन बोला असुर-"अब न बचेंगे प्राण ॥

## ❀ गाना ❀

हे राम, आज तुमने क्या रूप दिखाया है ।
दी, खोल मेरी आँखें वह तीर चलाया है ॥
भगवन् तुम्हें मैं अबतक क्षत्री समझ रहा था ।
इस वक्त जो देखा तो कुछ और ही माया है ॥
नर—रूप में नारायण आए मुझे जिलाने ।
यह बाण नहीं मारा पीयूष पिलाया है ॥
चक्कर जो चल रहा था वह तीन जन्म वाला ।
उसमें से दूसरा भी यह फन्द छुड़ाया है ॥
संग्राम के अम्बर में चमका है भाग्य तारा ।
कर वैर-भक्ति हमने भगवान को पाया है ॥
यह ही सलोनी सूरत, फिर भी हो अपने सम्मुख ।
आगे को भी निभाना, अबतक तो निभाया है ॥

—: • :—

'राम-राम' कह भक्त ने ली जिस समय समाधि ।
सुरमंडल का दुख मिटा गई भूमि की व्याधि ॥
विजय-सहित लौटे जभी श्रीरघुवंशकिशोर ।
जय-ध्वनि 'राधेश्याम' तब छाई चारों ओर ॥

अगले दिन घननाद ने किया विलक्षण काम ।
नागपाश में बँध गया राघवकटक तमाम—
जाम्बुवान का उस समय हुआ प्रचण्ड प्रहार ।
वृद्धशक्ति के सामने गई तरुणता हार ॥

बस यहीं, यहीं गरुड़ध्वज ने श्रीगरुड़देव बुलवाए थे ।
सब नाग स्वयं ही भाग गए, जिस समय नागरिपु आए थे ॥
यह बन्धन-मुक्त खेल प्रभु ने—इस कारण यहाँ दिखाया था—
अभिमानी रिपु को लज्जितकर निज जन का मान बढ़ाया था ॥

फिर वह ही आनन्द था—फिर वह ही जयकार ।
सुरमण्डल गुणगान कर, होता था बलिहार ॥

## ❀ गाना ❀

नमामि राममीश्वरं धराविपद्विभञ्जनम्—
समीहितार्थदायकं समस्तलोकनायकम् ॥
विचेष्टमव्ययं विभुं विभूषिताब्जलोचनम्—
विनीतभक्तवत्सलं विदेहकन्यकावरम् ॥ १ ॥
नमामि निर्विकल्पकं निरापदं निरञ्जनम्—
नरस्वरूपधारिणं नरोत्तमं सनातनम् ॥
यथा जहार भीषणं निहत्य राक्षसेश्वरं
दिवौकसां महापदं तथास्तु राम शाश्वतम् ॥ २ ॥

❀ इति ❀

# ● श्रीराम-कथा ●

संख्या—१८

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है

( लङ्का-काण्ड )

लेखक—
नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तनकलानिधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न
पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—

उन्हत्तरवाँ संस्करण ] सन् १९८२ [ मूल्य १)

## प्रार्थना

इस तन में रमा करना इस मन में रमा करना ।
बैकुण्ठ यही तो है, इसमें ही बसा करना ॥
हम मोर बन के मोहन, नाचा करेंगे बन में ।
तुम श्याम घटा बनकर—उस बन में उठा करना ॥
बन-बन के हम पपीहे—पी-पी रटा करेंगे ।
तुम स्वाति-बूँद बनकर—प्यासों पै दया करना ॥
हम "राधेश्याम" जग में—तुमको ही निहारेंगे ।
तुम 'दिव्य-ज्योति' बनकर—नयनों में रमा करना ॥

राघव द्वारा जब हुआ कुम्भकरण–संहार ।
लङ्का में घर घर मचा भीषण हाहाकार ॥
मेघनाद बोला–"करें सोच न लंकाराय !
धिक् मुझको, जो आपके मुख से निकले–'हाय' ॥
मैं वह हूँ नागपाश-द्वारा जकड़ा था जिसने कपिगण को ।
बच गए, नहीं कल ही समाप्त कर देता राघव लक्ष्मण को ॥
चाचा का बदला लिए बिना, कब भाता है विश्राम मुझे ।
जबतक न विजय पाकर आऊँ तबतक जलपान हराम मुझे ॥"
यह कहकर ज्यूँही चला रण–मदमाता वीर ।
तभी दशानन ने कहा–"ठहरो, न हो अधीर ॥
हो गई, निरर्थक ब्रह्मशक्ति जब तपसी बच्चों के आगे—
तो और शक्तियाँ ठहरेंगी, कब तपसी बच्चों के आगे ?
इसलिए–अजेय शक्ति लेने, मन्दिर में जाओ योग करो ।
रणवीर, इष्टदेवी से तुम, रण के पहले अनुराग करो ॥"
पितृभक्त ने मान ली, वृद्ध पिता की बात ।
विजय–यज्ञ करने लगा–देवी मठ पर प्रात ॥
भूतल पर आया हल-चला, तारामण्डल तिलमिला उठा ।
अति प्रबल तामसी यज्ञ देख–सात्त्विकी जगत् कँपकँपा उठा ॥

ध्वनि तो थी वेदमन्त्र ही की—पर वैदिक धर्म मिटाने को ।
पूजा थी महाशक्ति ही की, पर—जग का नाश कराने को ॥
ज्योंही फैला—धुआँ वह, नभ के ऊपर घोर !
कहने लगे खरारि तब—देख विभीषण ओर ॥
"यह कैसे बादल छाये हैं ? कैसी आँधी—सी आई है ?
उस मायावी दशकन्धर ने क्या माया नई रचाई है ?
सचमुच ही धुआँ उड़ाया है तान्त्रिक ने तन्त्रों के द्वारा—
या विष फैलाया है कोई, वैज्ञानिक यन्त्रों के द्वारा ?"
कहा विभीषण भक्त ने—"हे जग के प्रतिपाल ।
माया भी कोई नहीं, और न कोई चाल ॥
जग जननी के मठ से उठकर—जग में यह धुआँ भर रहा है ।
उस मठ में बैठा इन्द्रजीत—देवी को सिद्ध कर रहा है ॥
उस विजय-यज्ञ में मेघनाद, इस बेला—पूर्ण दत्तचित है ।
यदि यज्ञ पूर्ण हो जायेगा, तो अपनी जीत अनिश्चित है ॥"
यह सुनते ही हँस पड़े—श्रीअञ्जनीकुमार ।
बोले—"हारे हृदय की, सभी जगह है हार ॥
जग में जब अपने पौरुष से लाचार पुरुष हो जाता है—
तो देवी और देवता को कायर की भाँति मनाता है ॥
पागल है वह, जो देवी के मन्दिर पर नाक रगड़ता है ।
देवी तो उसकी रक्षक है—जो युद्ध धर्म पर करता है ॥"
पवनतनय की युक्ति से, मुस्काए रघुराय ।
आज्ञा लेकर उसी क्षण चला कीश-समुदाय ॥
ज्यों दक्ष—यज्ञ में पहुँचे थे—उद्दण्ड वीरगण शङ्कर के ।
त्यों असुर—यज्ञ में जा धमके, दुर्दण्ड चण्ड कपि रघुवर के ॥

क्षणभर के भीतर कुछ का कुछ रङ्ग पलट दिया बलवीरों ने ।
उस विजय-यज्ञ की वेदी पर, रण-यज्ञ रचा रणवीरों ने ॥
चण्डी की प्रतिमा के आगे-रणचण्डी का आह्वान हुआ ।
भर गया रक्त से हवन कुण्ड ऐसा भीषण बलिदान हुआ ॥
मानो रावण का पूर्ण पाप सब आज उदय हो आया है ।
या-वैदेही का विरह ताप इस भाँति पूर्ण रँग लाया है ॥

'स्वाहा'-ध्वनि से जब भिड़ा, हाहाकार कराल ।
मेघनाद करके उठा-मेघनाद तत्काल ॥

कितनों को उठते उठते ही दाँतों से दबा-चबा डाला ।
कितनों को उस मदमाते ने मिट्टी में वहीं मिला डाला ॥
चटपट चुटकी में, चुटकी ने, कपि-कटक जर्जरित कर डाला ।
मुखिया मुखिया जो योद्धा थे उन सबको मूर्छित कर डाला ॥

बचा खुचा अब कीशदल-कर चिल्लाहट घोर ।
भागा हिम्मत हारकर, राघवेन्द्र की ओर ॥
तभी उर्मिला-नाथ का, गया धनुष पर हाथ ।
बोले-"रण-आज्ञा मुझे, फिर दें श्रीरघुनाथ ॥

यह सिंह, चुटीला सिंह आज, बस हृदय विदारेगा उसका ।
सौगन्द इन्हीं चरणों की है-अब शीश उतारेगा उसका ॥
बोलेगा छल की छाती पर कबतक न सत्यता का डङ्का ?
लङ्का में आज बजा दूँगा मैं आर्य-वीरता का डङ्का ॥"

प्रभु बोले-"आज्ञा मिली, जाओ लड़ने भ्रात ।
लेकिन लड़ने से प्रथम, ध्यान रहे यह बात--

घननाद साधु है, तपसी है, बलशाली है, वरदानी है ।
संयमी नारिव्रत वाला है, एक ही प्रमीला रानी है ॥

वह योगी स्वयं योगद्वारा—यदि चाहे तो मर सकता है।
मरकर फिर अपने प्राणों को—तन में प्रविष्ट कर सकता है॥
इस कारण—ऐसे योद्धा का तन छिन्न-भिन्न कर आना तुम।
सिर को हाथों ही हाथों में सादर मेरे ढिंग लाना तुम॥
कारण कि—शीश आजाने पर कुछ और कार्य भी करना है।
विज्ञानदृष्टि से वह मस्तक हम सबको यहाँ परखना है॥
इस महाकार्य के साथ साथ—कुछ और गुप्त भी कारण हैं—
उस कारण ही पर अवलम्बित अपनी जय है, अपना रण है—
वह सती प्रमीला सुलोचना जो मेघनाद की नारी है।
त्रिभुवन—विख्यात साध्वी है, वासुकि की राजकुमारी है॥
इस जग में उत्तम श्रेणी की वह पतिव्रता कहलाती है।
उसके व्रत ही की शक्ति सदा स्वामी को विजय दिलाती है॥
ऐसी सतवन्ती के पति का सिर अगर भूमि पर आएगा।
कपिदल तो किस गिनती में है—संसार भस्म होजाएगा॥

कुम्भकरण इत्यादि का हुआ ठीक संहार।
उससे तो निश्चय घटा धरती का कुछ भार॥

पर मेघनाद वध के पहले होता है कुछ संकोच मुझे।
पृथ्वी से नर उठ रहा एक, रह रह होता यह सोच मुझे॥
नारी यदि पतिव्रता है तो वह भी नारीव्रत वाला है।
ब्रह्मा ने यह निर्मल जोड़ा, उज्ज्वल हाथों से ढाला है॥
सचमुच रावण का पाप आज उसकी भी नाव डुबाता है।
घर का स्वामी पापी हो तो घर भर का नाश कराता है॥
अच्छा जाओ वध करने को—अब और नहीं कुछ कहना है।
दुनिया तो आनी-जानी है—आखिर तक किसको रहना है॥

'धन्य-धन्य' कहने लगा-भालु-कीश-समुदाय ।
लषण चले रण के लिए-समझ सब अभिप्राय ॥
सम्मुख लक्ष्मण को निरख बोल उठा घननाद !
'अरे आज फिर आगया ! रही न पिछली याद !
उस बार भाग्य ने बचा दिया, इस बार न बचने पाएगा ।
पहले मूर्छा ही आई थी, पर अबके प्राण गँवाएगा ॥
मैं वह सागर हूँ बड़ा अगर, तो प्रलय काल उमड़ाएगा ।
वह ज्वालामुखी शैल हूँ मैं, फूटा तो जग जल जाएगा ॥"
लक्ष्मण बोले-"गर्व यह, यह घमण्ड दे त्याग ।
'मैं मैं' का अच्छा नहीं, किसी भाँति भी राग ॥
है वही शक्तिशाली जग में-जो नम्र भाव दिखलाता है ।
फलवाला तरु जब फलता है नीचे को झुकता जाता है ॥
मैंना जो 'मैं-ना' कहती है, वह सबके मन को भाती है ।
बकरी जो 'मैं-मैं', करती है, वह गले छुरी फिरवाती है ॥"
बात काटकर बीच में, बोल उठा घननाद ।
"बच्चे, यह रणभूमि है, नहीं राज-प्रासाद ॥
साहस, धीरज या स्वाभिमान, रणवीरों का आभूषण है ।
नाहर-सा गर्जन-तर्जन ही-सच्चे योद्धा का लक्षण है ॥
मैंना जो-'मैं-ना' कहती है, पिंजरे में जन्म बिताती है ।
बकरी गर्दन कटवाती है, फिर भी, 'मैं' तनिक न जाती है ॥"
'जाती है'-बोले लषण-"उसकी भी यह टेक ।
'मैं—वाली के लिए भी, आता है दिन एक—
कर अस्थि-मांस को पृथक पृथक जब आँत निकाली जाती है ।
फिर उसी आँत की यन्त्रों से, जब ताँत बनाली जाती है ॥

वह ताँत-जिस समय-हाथों में धुनने वाले के आती है।
धुनियाँ जब उसको धुनता है-तब 'तूही, तूही' गाती है॥

### ❀ गाना ❀

गर्व है बुरा अरे घननाद।
बड़ों बड़ों को कर देता है, क्षण में यह बर्बाद॥
गर्व किया था खरदूषण ने रहा न पता निशान।
गर्व किया था कुम्भकरण ने-पहुँचा तुरत मसान॥
गर्व का है परिणाम विषाद॥"

— ० —

लक्ष्मण का उपदेश सुन गरजा फिर बलवान।
बोले-"बच सकती नहीं, आज तुम्हारी जान॥
'ब्रह्मशक्ति से हों व्यथित फिर न हमारे प्राण।
यही सोच, छोड़ा वहीं लक्ष्मण ने निज बाण॥
वह बाण न था, था कालबाण क्षणभर में सायंकाल किया।
उस इन्द्रजीत से योद्धा का-जर्जरित हृदय तत्काल किया॥
सुध-बुध शरीर की नष्ट हुई, यह हाल हो गया योद्धा का।
आँखों के आगे अन्धकार-छागया मृत्यु की निद्रा का॥
इतने ही में दूसरा बाण लक्ष्मण के कर से फिसल गया।
वह उसकी दायीं भुजा काट-आकाशमार्ग से निकल गया॥
फिर उसके हाथों पाँओं को-दो चार शरों से-भिन्न किया।
कुछ शायक ऐसे भी पहुँचे सम्पूर्ण अङ्ग को-छिन्न किया॥
'जय-राघवेन्द्र' कहकर तुरन्त, सर काटा उसका लक्ष्मण ने।
पहुँचाया रिपु को परमधाम-'श्रीराम-नाम'—उच्चारण ने॥
जो सिर लंका में रहता था लंकावालों के माथों पर।
इस समय रक्त से लथपथ वह-था महावीर के हाथों पर॥

लषणलाल आए इधर-बानर दल के सङ्ग ।
अब जो कुछ बीता उधर, सुनिए वही प्रसङ्ग ॥
'सुलोचना' के नाम से-है जो जग विख्यात ।
उसी 'प्रमीला' सती की कहते हैं हम बात—
असुरों में रहने पर भी वह, स्वर्गीया समझी जाती थी ।
काले अम्बर पर लंका के—चन्द्रिका-समान सुहाती थी ॥
नैना नीके, हिरनी के से—चञ्चल, उज्ज्वल रतनारे थे ।
खञ्जन-मद-गञ्जन, मन-रञ्जन, बिन अञ्जन भी मतवारे थे ॥
सत् और पतिव्रत के कारण यदि-'सती' पुकारी जाती थी ।
तो अपने इन्हीं लोचनों से, वह 'सुलोचना' कहलाती थी ॥
आज सबेरे वह सती—कर उद्यान विहार—
पति-सेवा को गूँथने बैठी सुन्दर हार ॥
हाथों से हो रहा था फूलों का सम्मान ।
अधरों से झर रहा था सुधा-सरिस यह गान—

❀ गाना ❀

"मेरे जीवन की माला के जीवन धन तार तुम्हीं तो हो ।
इस हार में जो उपहार को है-कर रहे विचार तुम्ही तो हो ॥
जभी पिरोती बैठकर मैं धागे में फूल ।
तभी विरह के और भी चुभते तन में शूल ॥
देखना डोर न यह टूटे, हाथ से छोर न यह छूटे ।
माला और मालावाली का सारा शृंगार तुम्ही तो हो ॥"

—।०।—

इतने ही में वायु का झोंका आया एक ।
इधर-उधर को उड़ चले-थे जो फूल अनेक ॥
फड़क उठा दायाँ नयन, खुले शीस के बाल ।
घबराहट में—हाथ से छूट पड़ी वह माल ॥

साड़ी ने माँग बिगाड़ी जब, माथे की बेंदी जभी गिरी ।
शर-प्रेरित वज्र-समान भुजा-आकाश-मार्ग से तभी गिरी ॥
मुक्का-सा छाती पर बैठा, आँखें पथरा उट्ठीं दोनों ।
उस एक भुजा से मिलने को पत्नी की भुजा बढ़ी दोनों ॥

बोली-"हैं ! यह क्या हुआ ! अरे नाथ के हाथ ?
शर का साथी क्यों बना तज दासी का साथ ?

जिन हाथों ने-रक्षा के हित, तुमको सर्वस्व बनाया था ।
बदले में-भारी से भारी सेवा का भार उठाया था ॥
जो तुझे छोड़कर बढ़े नहीं, जग या जगदीश्वर के आगे ।
चूड़ियाँ पहनने तक भी, जो गए नहीं नर के आगे ॥
हे पति के हाथ, बता इतना-उन हाथों को क्यों छोड़ा है ।
पञ्चों में जिनको पकड़ा था, उनसे क्यों नाता तोड़ा है ॥
तू छोड़ रहा इन हाथों को, यह हाथ न तुझको छोड़ेंगे ।
सम्बन्ध-जन्म जन्मान्तर का-तोड़ा है और न तोड़ेंगे ॥
इस दिव्य जगत् में नारी की शोभा सारी पति ही से है ।
यह दुनिया भी पति ही से है, वह दुनिया भी पति ही से है ॥"

यह कहकर-उस भुजा तक, पहुँचाए निज हाथ ।
चाहा-उसको पास में लूँ आदर के साथ ॥
पर, कुछ ठिठकी उसी क्षण, सोची ऐसी बात—
"माया का तो है नहीं, इसमें कुछ उत्पात ?

सम्भव है नारि-परीक्षा को, पति ने यह खेल रचाया हो ।
या बनकर पति का हाथ कहीं पर-पति का हाथ न आया हो ॥
इसलिए शीघ्रता करने में-सतपन पर बट्टा आएगा ।
तप जाएगा, यश जाएगा, प्रिय पतिव्रत भी जाएगा ॥"

हृदय-सिन्धु में जब उठी-यह गम्भीर हिलोर ।
पति के कर से उसी क्षण, बोली वह कर जोर—
"यदि तू पति का हाथ है नहीं किसी की चाल !
तो तुझको मेरी शपथ, लिखदे सच्चा हाल ॥"
इन शब्दों से सती के डोल उठा भूगोल ।
आत्मा उस घननाद की-पड़ी भुजा में बोल ॥
खड़िया से पृथ्वी के ऊपर, अविनाशी शक्ति बढ़ी लिखने ।
उस पतिव्रता के प्रश्नों का उत्तर-वह भुजा लगी लिखने ॥
शंका की जगह नहीं है यह साध्वी के सत् की लीला है ।
यह सूक्ष्म शक्ति की बातें हैं यह गुप्त जगत् की लीला है ॥
लिखा हाथ ने-"प्रियतमे' परवश छूटा साथ ।
हाथ न है यह और का, है मेरा ही हाथ ॥
शेषावतार हैं लषणलाल, उनके-द्वारा संहार हुआ ।
इस वैर-भक्ति से मुक्ति हुई, इस रण-कारण उद्धार हुआ ॥
धड़ तो लंका के द्वारे है, सिर रक्षित है रामादल में ।
आत्मा अविनाशी विचर रहा,सुख से अनन्त के अञ्चल में ॥
पति पत्नी का सम्बन्ध सदा, आत्मिक सम्बन्ध कहाता है ।
शारीरिक नाता नश्वर है, अविनाशी यह ही नाता है ॥
इस नाते से कहता हूँ यदि तुमने यह तत्व पा लिया है—
तो निश्चय समझो सुलोचने पत्नी का स्वत्व पा लिया है ॥
सतवन्ती, उसी स्वत्व की-तुम, लंका में ज्योति जगा देना ।
कहते हैं किसको पतिव्रता ? यह दुनिया को दिखला देना ॥"
आत्मा पहुँची सूक्ष्म में' लिखकर इतनी बात ।
सुलोचना के शीश पर, हुआ वज्र सा पात ॥

गिरने दिया न भूमि पै—रोका हाथों हाथ ।
हृदयेश्वर के हाथ को—तुरत नवाया माथ ॥
बोली—"पहले की भाँति नाथ, कुछ भेद न अबके बतलाया ।
कह गए यज्ञ की बात यहाँ उस जगह युद्ध कर दिखलाया ॥
यह कैसा यज्ञ किया स्वामी ? आहुति दे डाली प्राणों की ।
रह गई कहानी अब जग में—पतिदेव, तुम्हारे बाणों की ॥
भगवान् किसी नारी को भी—दिखलाय न यह दिन स्यापे का ।
सारे दुःखों से बढ़कर है—दुनियाँ में दुःख रँडापे का ॥
रह गया खेद इतना मुझको, मैं साथ न रही रणस्थल में ।
तुमसे पहले अपनी आहुति, दे देती उस समरानल में ॥
या तुम मेरे सर पर होते, मैं होती चरण तुम्हारे पर ।
हम दोनों साथ-साथ मरकर, जाते उस शान्त किनारे पर ॥
आने दो—आरही है, यदि संकट की रात ।
मैं तो उसकी किरण हूँ—जिसके साथ प्रभात ॥
इस धरती पर अपनी जोड़ी अति उत्तम मानी जाती थी ।
तुम पत्नीव्रत में पूरे थे, मैं पतिव्रता कहलाती थी ॥
अब उस दुनिया में भी प्रियतम, यह ही आदर्श दिखाने को ।
आएगी पति की अर्द्धांगिनी, पति—पत्नी-धर्म निभाने को ॥
हाँ, हाँ, पति-पत्नी का नाता, जन्मान्तर तक का नाता है ।
पृथ्वी से लेकर गगन तलक यह नाता माना जाता है ॥
इसलिए तुम्हारी आत्मा में अपनी आत्मा पहुँचाऊँगी ।
तुम युद्ध मार्ग से चले गए, मैं सती-मार्ग से आऊँगी ॥
अबतक फूलों के हारों को प्रतिमा पर नित्य चढ़ाया है ।
अब जीवन रूपी मुद्रा के, न्योछावर का दिन आया है ॥

उठ गई सेव्य-प्रतिमा तो फिर सेवक प्रतिमा का काम नहीं ।
तालाब सूख जब जाता है, रहता मछली का नाम नहीं ॥
सिन्दूर भरेगी केशों में—अब वही धधकती हुई चिता ।
विधवा की सुखद सेज होगी—प्रियतम की जलती हुई चिता ॥

## * गाना *

होनी थी सो होली, नाथ, अब खेलूँगी होली ।
अंग-अंग में विरह रंग ले—केशर-सी है घोली ॥
हड्डी हड्डी में अबीर है नयनों में है रोली ।
भरी है सत् की झोली, होनी थी सो होली ॥

[ २ ]

घुआँधार जब हो जाएगी सब चुनरी और चोली—
जलती हुई चिता पर होगी तब पति साथ ठठोली ।
जायेगी सुरपुर डोली । होनी थी सो होली ॥"

—o—

चढ़ा सती पर—जिस समय-सत् का ऐसा रङ्ग ।
दशकन्धर आया तभी मन्दोदरि के सङ्ग ॥
बोला—"बेटी, क्यों रोती हो ? क्यों करुणा-नदी बहाई है ।
तुम तो उसकी प्रिय पत्नी हो—जिसने महान् गति पाई है ॥
बेटे का बदला लेने को, मैं अभी समर में जाता हूँ ;
उस एक शीश के बदले में, लाखों शीशों को लाता हूँ ॥"
इन वचनों से और भी, भड़की मन की ज्वाल ।
लाज शर्म सब छोड़कर, बोली वह तत्काल ॥
"श्रीमद्दाराज, यह बेटी तो, केवल आशीष चाहती है ।
लाखों शीशोंका क्या होगा ? निजपति का शीश चाहती है ॥
वे गए वीर-गति पाकर हैं, मैं नारि—उचित गति पाऊँगी ।
पति का शव साथ चिता में ले, सानन्द सती हो जाऊँगी ॥

## ❀ गाना ❀

"बिना पति सूना है संसार ।
पति ही जप है—पति ही तप है पति ही है कर्तार ॥
पति ही से पत है इस तन की बिन पति विपति हज़ार ।
एक पतिव्रत रहे जगत् में तो सब व्रत बेकार ॥
बिना पतिव्रत के—नारी का जीवन है धिक्कार ॥"

—: ० :—

पुत्रवधू के यह वचन, सुन न सका दशभाल ।
रण प्रबन्ध के वास्ते, चला गया तत्काल ॥
तब मन्दोदरि ने कहा—"बेटी, यह बतलाउ—
इस बूढ़ी की किस तरह, पार लगेगी नाउ ?
मरने से मेघनाद ही के—जर्जरित हो रही छाती है ।
दुःखों पर और दुःख है यह तू भी अब बिछुड़ी जाती है ॥
किस भाँति रहूँगी जीवित मैं इतना मुझको समझाए जा ।
तू मुझ अन्धी की लकड़ी है रस्ता तो मुझे दिखाए जा ॥"
मन्दोदरि के हृदय पर कष्ट अथाह विलोक—
वधू प्रमीला ने कहा—"माता, करो न शोक ॥
ईश्वर या देश, जाति के हित-रण में जो प्राण गँवाता है ।
वह ही तो जग में जन्मा है, उसकी माता ही माता है ॥
इसलिए मात, रोना छोड़ो, यह अवसर रोने योग्य नहीं ।
जग से इतना ही नाता था, और यहाँ कुछ भोग्य नहीं ॥
तुम सी भी संसार में नारि न होगी अन्य ।
देख तुम्हारे चरित को, कहना पड़ता—'धन्य' ?
मन के विरुद्ध पति पाकर भी, ईश्वर-समान अपनाती हो ।
उसके दुख में दुख पाती हो, उसके सुख में सुख पाती हो ॥

सीमा है वह पतिव्रत की, जितना आदर्श तुम्हारा है।
सचमुच तुम जिस पथ पर हो माँ, वह पथ खाँड़े की धारा है॥
तिस पर यह एक स्वर्ण-पन्ना, ग्रन्थों में रक्खा लंका के।
श्रीइन्द्रजीत से बलशाली, संयमी पुत्र को उपजा के॥
फिर मेरा जीवन भी पावन, तुमने ही मात बनाया है।
पितु के गृह में जो सुख न मिला, वह सुख इस घर में पाया है॥
मैं बतलाऊँ क्या तुम्हें? तुम मुझको बतलाउ—
विधवाओं के विषय में माता, कुछ समझाउ॥"
बैठ गई, मन्दोदरी—यह सुनकर उस ठौर।
बोली—"तुझसी भी बहू, नहीं मिलेगी और॥
जग में जो धर्म बहू का है, वह तूने पूरा जाना है।
भूले भी सास नहीं समझा, माता ही मुझको माना है॥
घर के झगड़ों से दूर रही, घरवालों को सम्मान दिया।
गहने-कपड़ों का मोह छोड़, गृहचर्या पर ही ध्यान दिया॥
इसीलिए वैधव्य में तुझको आज निहार—
विधवाओं के भेद में—कहती हूँ दो चार॥
सच तो यह है उत्तम विधवा वे ही जग में कहलाती हैं।
जो पति के साथ सती होकर, पतिपुर को सीधी जाती हैं॥
वे भी हैं—उत्तम के समान—जो रहती हैं तपसिन बनकर।
जगपति की पूजा करती हैं अपने पति की विरहिन बनकर॥
अथवा निज बहनों का सुधार रखती हैं नित अपने चित में।
सच्ची सन्यासिनि बन-बनकर, लगती हैं देश-जाति-हित में॥
तारायण चन्द्रायण व्रत कर, दिन प्रतिदिन देह सुखाती हैं।
उत्तम आदर्श कथाओं को, सुनती हैं और सुनाती हैं॥

वे मध्यम हैं जिनका जग में भोगों से चित्त न भरता है।
घर में मन मारे रहती हैं, पर मन न किसी क्षण मरता है॥
चूड़ियाँ तोड़ देने पर भी जो नहीं चूड़ियाँ तोड़ सकीं।
जीवन-शृङ्गार समाप्त हुआ फिर भी शृङ्गार न छोड़ सकीं॥
सत्संगति जिनके साथ नहीं, मन में जिनके सन्तोष नहीं।
ऐसी विधवाओं का विवाह, फिर हो जाए तो दोष नहीं॥

चौथी विधवाएँ नहीं दुनियाँ को दरकार।
उनका रहना भूमि पर है अति भारी भार॥

वे विधवाएँ हैं? कभी नहीं, ऊँचे कुल की कुलटाएँ हैं।
वेश्याओं से भी गिरी हुई, पर्देवाली वेश्याएँ हैं॥
इन वेश्याओं की आत्माएँ, भीतर ही भीतर सड़ती हैं।
सैकड़ों सहस्रों बरसों तक, रौरव नरकों में पड़ती हैं॥

सुलोचना चरणों गिरी—सुनकर यह उपदेश—
"इस विधवा के हेतु माँ, क्या है अब आदेश?
उत्तम वैधव्य यही है जब—निज पति के साथ सती होना?
तो कहदो वधू—"प्रमीला तू वैसी ही सुगतिवती होना॥
संकोच छोड़ दो, मोह तजो, बोलो जो बात मर्म की है—
दुनियाँ में सबसे बड़ी साख सद्व्रत की है स्वधर्म की है॥"

आँसू बरसाने लगे मन्दोदरि के नैन।
मानो आज्ञा दे उठे वे लोचन, बेचैन॥
आँखों आँखों में हुई—अर्जी जब मंजूर।
तभी आँख से होगई—सुलोचना भी दूर॥
पति चरणों का ध्यान धर मँगाकर सुखपाल।
रामादल की ओर को चली सती तत्काल॥

वहाँ सिन्धु-तट-पड़ा है, एक श्वेत पाषाण ।
राज रहे हैं उसी पर—वे भक्तों के प्राण ॥
कोमल तन धूलि-धूसरित है, जूटा है शीश जटाओं का ।
अपने सिर भार उठाए हैं, मानो-जग की सेवाओं का ॥
मख़मल रेशम का नाम नहीं, वल्कल का वस्त्र देह पर है ।
वह वस्त्र-बताता है-जग को, त्यागी राजा से बढ़कर है ॥
अद्भुत है शान्ति, मुस्कराहट उस श्याम सलोने आनन पर ।
गम्भीर ओज होता जैसे—पानी से भरे हुए घन पर ॥
पृथ्वी पर रक्खी है कमान, जग उद्धारक, जग-वन्दन की ।
त्रिभुवनमण्डल है लोटपोट, उस छवि पर कौशलनन्दन की ॥
भालुओं, वानरों मे वन में, क्षत्री ने सभा सजाई है ।
मानो-इस भाँति प्रकृति-द्वारा, 'जनपति' की पदवी पाई है ॥
फल, फूल, पात पर ही रहतीं, पोशाकें, रसद न लेती हैं ।
गिरि-खण्डों, वृक्षों से लड़तीं, शस्त्रों को कष्ट न देती हैं ॥
ऐसी सेनाएँ सम्मुख पा, सेनापति पुलकित, गर्वित हैं ।
सेनाएँ भी निज राजा पर-आनन्दित, प्रमुदित, हर्षित हैं ॥
गुप्तचरों ने उसी क्षण--दिया यह समाचार ।
"एक पालकी इधर को आती है सरकार ॥
किलकारी भरकर तभी-बोल उठे कुछ कीश—
"अब तो यह प्रत्यक्ष है-हार गया दसशीश ॥
इस सुघर पालकी में-उसने सीता माँ को भिजवाया है ।
है यह ही सच्चा सन्धिपत्र, जो इस अवसर पर आया है ॥
मर गया दशानन जीते जी, घननाद पुत्र के मरने से ।
शरणागत होने वाला है, घबराया है-रण करने से ॥"

शरणागत की बात से, विहँसे पवनकुमार ।
बोल उठे—"तब आयगी, सचमुच बड़ी बहार ॥
फिर कहने लगे विभीषण से—"अब क्या होगा ? बतलाओ तो ।
साँकल की एक प्रधान कड़ी, उलझी है—वह सुलझाओ तो ॥
कहदूँ ? बतलादूँ ? क्या है वह—जो सम्मुख आई कठिनाई ।
रावण भी शरण हो गया तो, लङ्केश कौन होगा भाई ?"
भक्त विभीषण तनिक भी, चिन्ता को हों प्राप्त ।
उससे पहले, यह विषय, प्रभु ने किया समाप्त ॥
बोले—"हम भारतवासी हैं, शरणागत को न भुलायेंगे ।
इनको लंकेश बनाया तो उसको अवधेश बनायेंगे ॥
अब तक दो भाई फिरते थे—बन बन में बनवासी होकर ।
अब चारों भाई विचरेंगे सब जग में सन्यासी होकर ॥"
उसी समय वह पालकी, आ पहुँची उस ठाम ।
बोल उठा वानर-कटक—"जय श्रीराजाराम ॥
फिर सबने देखा ! है यह क्या ! यह जागृति है या सपना है ।
सीता माता का धोखा था, यह तो रिपुवधू सुनयना है ॥
यह वह है—जिसका तेज देख, चक्कर में सूर्य चन्द्रमा थे ।
यह वह है शक्तिमयी देवी जिससे भयभीत देवता थे ॥
रावण की पुत्रवधू है यह वासुकि की प्यारी कन्या है ।
जो आज—जगत् की आँखों में साक्षात् बन गई करुणा है ॥
जिसने न कभी रोना देखा—वह रानी स्वयं रो रही है ।
पृथ्वी के ऊपर खड़ी हुई पृथ्वी का भार हो रही है ॥
सारा रामादल काँप उठा—उस सत् की आभा के आगे ।
भगवान् राम भी सकुचाए, तेजोमय प्रतिमा के आगे ॥

भक्त विभीषण रो पड़े, हुआ अत्यधिक क्लेश ।
सुध-बुध सारी खोगई, देख सती का वेश ॥
तभी सुनयना ने कहा कर निज पति का ध्यान ।
"तुम सबकी जय हो पिता, दिन प्रतिदिन हो मान ॥
मैं आज विपत् की मारी हूँ मैं दुख की आज सताई हूँ ।
अपना सिर नीचा किए हुए, पति का सिर लेने आई हूँ ॥
यदि राम दयासागर हैं तो रक्खेंगे टेक भिखारिन की ।
आशा तो है स्वीकृत होगी विनती यह एक भिखारिन की ॥

## ❀ गाना ❀

पति ने वीरों की सुगति युद्ध में मरना समझा ।
हमने होके सती संसार से तरना समझा ।
शस्त्र की राह से—गुजरा है जब अपना स्वामी ।
अग्नि की राह से तब हमने गुजरना समझा ॥
रक्त में न्हाए पिया, आग में हम न्हायेंगे ।
अब रँड़ापे के समय मांग का भरना समझा ॥
मोक्ष निज गोद में लेने को हमें आएगी ।
आत्म बलिदान अगर धर्म पै करना समझा ॥"

—:o:—

करुणानिधि ने जब सुने करुणा के यह बैन ।
लगे भूमि को देखने, तत्क्षण दोनों नैन ॥
सतवन्ती के तेज का, ऐसा पड़ा प्रभाउ ।
बोल न सके तुरन्त ही, रघुराई रघुराउ ॥
पृथ्वी माँ की ओट में—कुछ क्षण के उपरान्त ।
इस प्रकार कहने लगे सीतापति श्रीकान्त—
"हे देवी तुम पर दुःख देख, मैं भी अति दुःखी हो रहा हूँ ।
तुम रोती हो प्रत्यक्ष उधर, मैं मन में इधर रो रहा हूँ ॥

दुर्लभ है ऐसा जग-विजयी, जिस पर सब का गौरव है।
वह शूरवीरता, वह साहस, पृथ्वी पर मिले असम्भव है॥
यदि किसी भाँति यदि किसी तरह, आत्मा के या तप के बल से।
जीवित हो जाए मेघनाद सत्कर्म-धर्म के प्रतिफल से—
तो हर्षपूर्वक मैं अपने सब सुकृत दान कर सकता हूँ।
लङ्का की राज-पतोहू का-इस भाँति मान कर सकता हूँ॥"

असुरारी के जब सुने यह उदार, प्रिय बैन।
विह्वल हुई सुलोचना, भरे अश्रु से नैन॥

बोली-"हे भानुवंश-भूषण, हे रघुपति, रघुवर, रघुराई।
कह गए आप जो बात अभी-वह प्राणों को है सुखदाई॥
औरों के लिए आप अपना सुख छोड़ रहे, अद्भुत बल है।
हे राम आपका यह चरित्र अति निर्मल है, अति उज्ज्वल है॥
लेकिन मैं कहती हूँ—मेरा सन्मान नहीं है कुछ इसमें।
परलोक-निवासी पति का भी उत्थान नहीं है कुछ इसमें॥
वे देवलोक से लौट अगर-इस मृत्युलोक में आयेंगे—
तो इसमें कुछ सन्देह नहीं, फिर ऐसी सुगति न पायेंगे॥

एक और भी बात है कहदूँ वह असुरारि!
भार न लेगी शीश पै, इन्द्रजीत की नारि॥

लक्ष्मण से तपसी का पति ने-सब भाँति पूर्ण सम्मान किया।
पूजा करते-याचक आया—उसको प्राणों का दान दिया॥
भ्राता से उसके प्राणदान? ले सकती नहीं प्रमीला है।
दी हुई भीख क्या लेगा? यदि दे सकती नहीं प्रमीला है॥

लक्ष्मण, तुम इस बात का करना मत अभिमान।
"मारा है घननाद को हूँ मैं अति बलवान॥"

घननाद-लषण का महायुद्ध—बस एक ऊपरी पर्दा था ।
वास्तव में दो सतियों का मत, संग्राम-भूमि में लड़ता था ॥
जो अवधपुरी में बैठी है, उस तपसिन से रण था मेरा ।
निज पति को रक्षित रक्खूँगी, यह महाकठिन प्रण था मेरा ॥
पर, पति तो उसके साथी थे, पर-पत्नी जो हर लाया है ।
बस इसी एक दुर्बलता ने-मुझको यह दिन दिखलाया है ॥
मैं तो इस ओर अकेली हूँ, उस ओर साथ में सीता है ।
इसलिए प्रमीला से यह रण, उर्मिला सती ने जीता है ॥
पति का कर शर से विंधा हुआ-आकाश-मार्ग से आया है ।
उसने ही पृथ्वी पर लिखकर, सिर का सब पता बताया है ॥
संकेत उसी का पाकर मैं, सन्देश उसी का पाकर मैं ।
अपना धन माँग रही तुमसे, दोनों ही कर फैलाकर मैं ॥

## ❀ गाना ❀

दीजिए बस इतना उपकार ;
रघुकुल—तिलक ललाम, राम ! करुणा के पारावार ॥
बिखरी नैया मुझ दुखिया की डूब रही मँझधार ।
शीघ्र कृपा बल्ली से इसको, करिए पल्ली पार ॥
पति पत्नी के विमल प्रेम का टूट न जाए तार ।
इसी आस को लिए—पपीहा पिउ पिउ रही पुकार ॥

—: ० :—

पत्नी का पति में निरख—इतना प्रेम अनन्य ।
पुलकि उठे रघुवंशमणि, बोले—"देवी, धन्य ॥
कह सकता कौन तुम्हें अब यह—तुम निशचरकुल की दारा हो ।
तुम लङ्का के मरु जङ्गल में, सुरसरि की पावन धारा हो ॥

सत् का प्रभाव पड़ता ही है, कब किसके रोके रुकती है ?
तुम इतने ऊँचे पथ पर हो, राघव का मस्तक झुकता है ॥"
यह कहकर संकेत से—माँगा लिया वह शीश ।
देने को उद्यत हुए जभी कोशलाधीश ॥
आगे बढ़कर इस तरह बोल उठे सुग्रीव—
"मुझे एक सन्देह है—रघुपति करुणासींव ॥
पृथ्वी के ऊपर कटी भुजा किस भाँति भला लिख सकती है ?
जो बात प्रकृति के है विरुद्ध वह नहीं जँचाये जँचती है ॥
लंकेश, क्षमा करना मुझको, यह संशय है, उपहास नहीं ।
लङ्का वाले मायावी हैं, हमको उनका विश्वास नहीं ॥"
कहा विभीषण ने तभी—"यद्यपि है यह ठीक—
सीधी होती है नहीं, समर-नीति की लीक ॥
फिर भी मेरा यह कहना है संशय का इसमें नाम नहीं ।
यह धार्मिक जग की बातें है, संग्राम नीति का काम नहीं ॥
नारी के पतिव्रत का बल, अनहोनी भी कर सकता है ।
पतिव्रत यदि हो उठे प्रबल, तो ईश्वर भी डर सकता है ॥
उत्तर में सुग्रीव तब बोले—"हे रघुराय !
यह हैं तो इसका हमें परिचय भी मिल जाय ॥
इस समरस्थल पर खड़े हुए बस रस्ता एक जानते हैं ।
विश्वास न गुप्त जगत पर है, प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं ॥
जिसने सत् वहाँ दिखाया है वह चमत्कार दिखलाये तहाँ ।
हो जायेगा विश्वास हमें यदि कटा शीश हँस जाय यहाँ ॥"
"हाँ हँस देगा शीश भी मत करिए सन्देह ।
बोली वह—"संसार में बड़ी वस्तु है नेह ॥

हे प्राणेश्वर के कटे शीश, आगई बात पातिव्रत पर ।
ठट्टा न उड़े इस विधवा का, बट्टा न कहीं आए सत पर ॥
आँखें तुमको ही देख रहीं—इस भरी सभा में आज यहाँ ।
इन टूटी हुई चूड़ियों की—मट्टी में मिले न लाज यहाँ ॥
आदेश तुम्हारे पर आई—रामादल में यह नारी है ।
अब लोक-हँसाई हुई यहाँ—तो मेरी नहीं, तुम्हारी है ॥
क्यों हँसते नहीं प्राण-जीवन ? क्यों मेरी हँसी कराते हो ?
ऐसी भी हँसी नहीं अच्छी—पञ्चों में हँसी कराते हो ॥

## ❀ गाना ❀

आगया परीक्षा का अवसर हँस दे मेरे सरताज के सर ।
अटकी है नाव किनारे पर हँस दे मेरे सरताज के सर ॥
हँस रहे हैं क्यों इस जग के नर, हँस रहे हैं क्यों धरती अम्बर ।
तू हँसकर इन सबको चुपकर हँस दे मेरे सरताज के सर ॥
तू रिपु के बल पर हँसता था, तू भुजमण्डल पर हँसता था ।
अब चुप क्यों बैठा योगेश्वर ? हँस दे मेरे सरताज के सर ॥
हाँ कटा हाथ भी लिखता है, फिर कटा शीश भी हँसता है ।
हँस हँसकर—दे इतना उत्तर, हँस दे मेरे सरताज के सर ॥
क्या हुआ शीश है कटा हुआ, कर कहीं, कहीं सर पर पड़ा हुआ ।
आत्मा तो है सब समय अमर, हँस दे मेरे सरताज के सर ॥
कुछ पहले मैं जो सुधि पाती, तो पति को अपने बुलवाती ।
कब होता फिर इस भाँति समर ? हँस दे मेरे सरताज के सर ॥"

—:०:—

सिरने सोचा—"वह पिता, वह वासुकि, वह शेष ।
हुआ यहाँ अवतीर्ण है धर लक्ष्मण का वेष ॥
कन्या हरने का लिया, बदला उसने आन ।
मारकेश की दशा कब देती जीवन-दान ?"
इसी बात पर सर हँसा, अट्टहास के साथ ।
काँप उठा—पृथ्वी गगन उमड़ उठा जलनाथ ॥

कुछ क्षण का वह दृश्य था—मुस्काए जगदीश ।
झुका शीश सुग्रीव का हँसा असुर का शीश ॥
तभी सुनयना ने उसे उठा लिया साह्लाद ।
रघुराई को फिर दिया ऐसा आशीर्वाद—
"हे जगदीश्वर, हे कौशलपति, सच्चाई जग को प्यारी है ।
कौशल जिस तरह तुम्हारा है, लङ्का उस तरह तुम्हारी है ॥
युग-युग तक राम रहोगे तुम, इतिहास-जगत् के पन्नों पर ।
यह नाम जपेंगे भक्त सदा, मन की माला के मनकों पर ॥"
लंका में वह आगई, लेकर पति का शीश ।
पहुँचाने को यहाँ तक—आए थे कुल कीश ॥
बस अब केवल यह कहना है—चन्दन की चिता तैयार हुई ।
वह दृश्य देखने के निमित्त, सागर पर भीड़ अपार हुई ॥
ज्वाला में दो भौतिक शरीर, जिस समय जले हम भूतल पर ।
पति—पत्नी दोनों प्रेम—सहित मिल गए तभी नभमण्डल पर ॥
गुप्त शक्तियों ने किया, ज्योंही कीर्ति बखान ।
कण-कण सारी प्रकृति का—गा उठ्ठा यह गान ॥

### ॐ गाना ॐ

"सती" जाओ पति के प्रिय धाम ।
मृत्युलोक के दुःख शोक से तुम्हें न अब कुछ काम ॥
कीर्ति तुम्हारी अचल हुई है अमर हुआ है नाम ।
बड़े पुण्य-फल से होता है यह सुन्दर परिणाम ॥
पतित-जाति भी पावन होती कृपा करे यदि राम ।
ऐसे दयाधाम की बोलो जय अब "राधेश्याम" ॥

—: o :—

—ॐ इति ॐ—

# श्रीराम-कथा

संख्या—१६

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है

(लङ्का-काण्ड)

लेखक—

नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—

कीर्तनकलानिधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न

पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—

उन्हत्तरवाँ संस्करण ] सन् १९८२ [ मूल्य १)

## आरती

जीवन–ज्योति जगाओ पुजारी, जीवन-ज्योति जगाओ ।
बाहर का अवलोकन छोड़ो, भीतर दृष्टि जगाओ ॥ पुजारी० ॥
हृदय-भवन है ठाकुरद्वारा, जहाँ वास करता है प्यारा ।
नित्य सवेरे आरति लेकर--प्रभु के सम्मुख जाओ ॥ पुजारी० ॥
सच्चाई की उठा बुहारी, बाहर करो गन्दगी सारी ।
आँखों की गंगा यमुना में—प्यारे को नहलाओ ॥ पुजारी० ॥
अपने प्राणों के तारों पर, श्वास-श्वास की झनकारों पर ।
'हरि-हरि' का संकीर्तन करके-दिग्दिगन्त गुञ्जाओ ॥ पुजारी० ॥
'राधेश्याम' यही पूजन है–यही भजन सुमिरन वन्दन है—
नारायण जैसे भी रीझें—वैसे उन्हें रिझाओ ॥ पुजारी० ॥

# कथा प्रारम्भ

राघवदल जब विजय मे था आनन्द-विभोर ।
पूर्ण चन्द्र प्रकटा तभी–पूर्व दिशा की ओर ॥
प्रभु बोले–"देखो तो शशि में है उज्ज्वलता, शीतलता भी ।
यह नहीं–समझ में आता है क्यों है इसमें श्यामलता भी ॥
सम्भव है विधि ने पूर्ण न हो, इस कारण ऐसा किया इसे ।
सुन्दरता ही के साथ-साथ काला धब्बा भी दिया इसे ॥
नल बोला "चन्द्र बनाने में, कौशल अति ब्रह्माजी का है ।
लग जाय कुदृष्टि नहीं–इससे, काढ़ा यह काला टीका है ॥
तब कहा नील ने–"नहीं-नहीं भूतल की शशि पर माया है ।
कृष्णांग इसी कारण है यह—पृथ्वी की इस पर छाया है ॥
"है गरल भ्रात कह उठे द्विविद" उसका है धुँधलापन इसमें !
"गहता है तम अङ्गद बोले" इसलिए साँवलापन इसमें ॥
मुस्काकर बोले जाम्बुवान–"रहता है पाप न छुपा हुआ ।
आचरणों में यह दूषित है, वह ही कलङ्क यह लगा हुआ ॥
चुनरी में निशि-वधू की–अम्बर पर सर्वत्र—
शोभित थे मुक्ता–सदृश यत्र तत्र नक्षत्र ॥
बढ़ा पूर्व को गुहा से–तब मयङ्क मृगराज ।
मानो तम गज-भाल को चूर्ण करेगा आज ॥

देख दृश्य यह मुदित मन, बोल उठे बजरङ्ग—
"मेरी भी अब कुछ सुनें, है जब यही प्रसङ्ग—
श्रीरामचन्द्र को निरख, चन्द्र निर्भय हो आगे बढ़ता है।
प्रभु की श्यामल छवि में उर में यह ही उसकी श्यामलता है॥
नक्षत्रों का कर तेज मन्द, निशिपति ज्यों नभ पर छाया है।
त्योंही असुरों को कर परास्त रघुपति ने सुयश कमाया है॥"
हनुमत की इस युक्ति ने डाला नया प्रकाश।
जय से श्रीरघुनाथ की गूँज उठा आकाश॥
कपिदल चारों ओर था, मध्य वीर हनुमान।
सब मिलकर करने लगे, निज प्रभु का गुणगान॥

## ❀ गाना ❀

—: ० :—

"राम कहो, राम कहो, राम कहो भाई रे।
रामजी का नाम है सदैव हर्षदाई रे॥
सोते जगते हर समय, रहे राम का ध्यान।
तो जीवन—संग्राम का जीत लिया मैदान॥
जन्म का यह बड़ा लाभ, बड़ी यह कमाई रे॥ १॥
मन में हो श्रीरामजी, मुख से मीठे बोल।
जीवन—यात्रा में बढ़ो—एक एक पग तोल॥
इसी में है भलाई 'राधेश्याम' सर्वथा भलाई रे॥ २॥

—०—

राम नाम की इस तरफ़ थी— जबगूँज अपार।
रावण के रनिवास में--था तब हाहाकार॥
निशचरपति ने जाकर देखा-करुणा की घटा छा रही है।
बेटे के मरने से—रानी—जीते जी मरी जा रही है॥
इसमें कुछ भी सन्देह नहीं-जब दुःख शीश पर आता है।
कितना भी धीरजवाला हो--धीरज उसका छुट जाता है॥

फिर भी साहस कर, दशकन्धर बोला--"कैसा यह स्यापा है ?
मेरे जीते ही जी घर में--इस भाँति शोक क्यों व्यापा है ?
रोना धोना अब बन्द करो मैं अद्भुत शक्ति दिखाता हूँ ॥
अपने सुत के हत्यारे से बदला सम्पूर्ण चुकाता हूँ ॥"
यह कहकर मठ में गया, जपा प्रकर्षण-मन्त्र ।
अहिरावण पाताल से आया खिंच परतन्त्र ।
"यह अहिरावण भी रावण का--बेटा प्राणों से प्यारा था ।
जिसके भय से पाताल लोक, थर-थर थर्राता सारा था ॥
साहस में और कुशलता में—बल में भी नहीं अधूरा था ।
देवी का परम उपासक था, निज इष्टसिद्धि में पूरा था ॥
वरदान मिल चुका था इसको, तुझको न हराएगा कोई ।
पर-छल से तूने चोरी की, तो फिर न बचाएगा कोई ॥
अहिरावण ने जब सुना-रावण का मन्तव्य ।
सोच समझ निश्चय किया समयोचित कर्तव्य ॥
बोला--"जाता हूँ निशि ही में, दोनों को हर ले जाऊँगा ।
बलिदान माँगती हैं देवी, उनको यह भेंट चढ़ाऊँगा ॥
चाँदनी रात अति बाधक है, पहले इसको ही हरना है ।
माया से अपनी-अन्धकार उस रामादल में करना है ॥
यह कह अहिरावण चला किया मन्त्र उपचार ।
मावस जैसा तुरत ही फैला तिमिर अपार ॥
मानो—ले साथ बहुतसा दल रण-नभ पर--राहु-केतु आए ।
चन्द्रमा छिपा, चाँदनी गई, काले-काले बादल छाए ॥
तब रूप विभीषण का धरकर, कपिकटक निकट निशचर पहुँचा !
चुपचाप कुशल नट के समान होकर अत्यन्त निडर पहुँचा ॥

कपिदल में थी खलभली, निरख अँधेरा घोर ।
महावीर कर रहे थे—देखभाल सब ओर ॥
मान विभीषण का सदा करते थे हनुमान ।
इसी हेतु उस रूप पर, दे न सके अति ध्यान ॥
वह कपटी,छद्मवेषधारी हो गया सफल अपने छल में ।
हनुमत् को भी धोका देकर पहुँचा—भीतर रामादल में ॥
जाते ही उस मायावी ने माया का कौतुक दिखा दिया ।
जगतों की आँखे झपका दीं, सोतों को गहरा सुला दिया ॥
धीरे धीरे पाँव धर चतुर चोर गम्भीर ।
उसी ठौर पहुँचा जहाँ सोते थे रघुवीर ॥
महि पर अशोक के पत्तों का था विमल बिछौना बिछा हुआ ।
तकिया था रुचिर कुशाओं का सिरहाने प्रभु के लगा हुआ ॥
निश्चिन्त मुनीश्वर के समान, मुनि-जन-मन-रञ्जन सोते थे ।
छविपति की उस अद्भुत छवि पर त्रिभुवन न्योछावर होते थे ॥
दुनिया के सोजाने पर भी, जो सदा जागते रहते हैं ।
लीला यह है वे लीलाधर, निद्रा-लीला भी करते हैं ।
है एक हाथ तो धन्वा पर, दूसरा हाथ लक्ष्मण पर है ।
पावों के नीचे लङ्का है मस्तक के ऊपर सागर है ॥
चारों दिशि सोता है कपिदल है जिसके कुमुद मयन्द द्विविद ।
सुग्रीव, नील, नल जाम्बुवान, धूम्राक्ष सुषेश, द्विविद अङ्गद ॥
मानों—योद्धाओं का मण्डल—प्रत्यक्ष क्षीरसागर सा है ।
श्रीसीतापति का दिव्य रूप उसमें श्रीकमलावर सा है ॥
अहिरावण ने सुस्थिर होकर आगे बढ़कर वह मुख देखा ।
अपने कितने ही पुण्यों का-जन्मों का फल सम्मुख देखा ॥

जब चेत हुआ तो ध्यान किया रावण के काम बनाने का ।
लक्ष्मण-समेत रघुराई को—चुपके से हर ले जाने का ॥
रावण ने सीताहरण किया—लंका का नाश कराने को ।
अहिरावण इन्हें लेचला अब—रावण का वंश मिटाने को ॥

मायावी का होगया मार्थक माया-जाल ।
मायापित को लेगया—महि मे वह पाताल ॥
कपिदल से ज्यों हीं हुआ—माया-कौतुक दूर ।
लगा दीखने सब जगह उजियाला भरपूर ॥

अब जगने वालों ने देखा—रण तो असुरों से हुआ नहीं ।
पर राघवेन्द्र, रघुराई का-लक्ष्मण-समेत है पता नहीं ॥
रघुकुलपति के खो जाने से सन्नाटा-सा छाया दल में ।
मानों सब स्वयं खोगए हों, इस भाँति विकल थे पल-पल में ॥

## * गाना *

राम—बिनु कपिदल सकल अधीर ।
व्याकुल, विकल,चतुर्दिश निरखत, कित गए रघुवीर ॥
धावहि कबहुँ लंका-नगरी दिश, कबहुँ सिन्धु के तीर ।
भए अशक्त, मीन जिमी जल बिनु, पंखहीन ज्यों कीर ॥

—: o :—

इस घटना से अत्यधिक—जिनमें उठे विचार ।
वे थे प्रभु के परम प्रिय—पायक पवनकुमार ॥
सोचा—"यह तो है विकट बात, क्या जाने इसका छोर कहाँ ।
हे बढ़ते हुए समुद्र बता, अपने प्रभु हैं किस ओर कहाँ ?
जिसने सीता का हरण किया, क्या उसने हरा राम को भी ?
निर्दयी निशाचर हत्यारा ले भागा दयाधाम को भी ?

ऐसा है तो सारी लङ्का-सागर में आज बहा दूँगा ।
दशमुख के शत-शत टुकड़े कर गीधों का ग्रास बना दूँगा ॥
हे पामर पापी, सावधान, अब यह हनुमान भयङ्कर है ।
कल तक लङ्कादाहक ही था, पर आज पूर्ण प्रलयङ्कर है ॥
फिर सोचा--"जिन प्रभु ने रण में उन कुम्भकरण को मारा है ।
जिन-लक्ष्मण ने वह मेघनाद वह इन्द्रजीत संहारा है ॥
जिनके कि नाम ही के बल से मैंने-लङ्का का दहन किया ।
अङ्गद ने पाँव जमाया वह खलदल का बल सब शमन किया ॥
उन स्वामी को किसका साहस--जो ले जाऐ कपिमण्डल से ।
रावण तो क्या यमराज तलक थर्राता है रामादल से ॥
तब ? तब हमसे कुछ भूल हुई, जो इस प्रकार मुँह मोड़ गए ।
भक्तों को सोता छोड़ गए, दासों को रोता छोड़ गए ॥
कुछ नहीं समझ में आता है, कुछ नहीं ध्यान में जँचता है ।
हे राम ! आप ही दें प्रकाश सेवक को नहीं सूझता है ॥
बस इन्हीं विचारों में अपने व्याकुल अत्यन्त वीरवर थे ।
क्या करें ? कहाँ जाएँ ? यह ही सब सोच रहे उस अवसर थे ॥

## ❀ गाना ❀

—०—

"भँवर में है अपना नौका—रूपी ससार ।
सूझ नहीं पड़ता है अब तो किधर वार या पार ॥ १ ॥
जगजंजाल में उलझे जब तो देखा आँख पसार—
आना जाना मरना सब कुछ है मँझधार ॥ २ ॥
छोटा-सा मस्तिष्क एक है भरे असंख्य विचार ।
शान्ति कहाँ ? जब इतना सर पर भार ॥ ३ ॥
सम्भव है सृष्टा ने जब यह रचा सृष्टि व्यवहार ।
हो अशान्त उस समय स्वयं वह महाशान्ति भण्डार ॥ ४ ॥
"राधेश्याम' विकार-रूप है-माया का व्यवहार ।
शान्तिस्वरूप एक वह ही है सबका सिरजनहार ॥ ५ ॥

—( ० )—

इतने में आए वहाँ-भक्त विभीषण राय ।
साथ-साथ था और भी भालु कीश समुदाय ॥
देख विभीषण को किया हनुमत् ने सम्मान ।
फिर कुछ बीती रात का आया इनको ध्यान ॥
बोले--"मैं जब प्रबन्ध में था--तब आप कहीं से आए थे ।
उस डरावनी अँधियारी में कुछ बात कहीं कर पाए थे ॥
मैं रहा उधर अपनी धुन में--पर आप नाथ की ओर गए ।
अतएव आप ही बतलायें--किस दिशि से युगलकिशोर गए ?
भक्त विभीषण चौंककर बोले वचन तुरन्त—
"यह क्या तुम कह रहे हो--बजरङ्गी, बलवन्त ?
मैं आया ही कब इधर ? थी जब काली रात ।
देखा तुमने स्वप्न है, या है भ्रम की बात ॥
चन्द्रोदय के उपरान्त रहा मैं तो प्रभु की सेवा में ।
फिर उन चरणों ही के समीप--सोया कुछ गहरी निद्रा में ॥
उस पल यह बैरिन आँख खुली जब कपिदल में कोलाहल था ।
सोए थे जहाँ कृपासागर, सूना वह सब शयनस्थल था ॥
हाँ, अब आया समझ में क्या है यह उत्पात ।
कुछ सन्देश सुषेण ने कहलाया था रात ॥
रावण का बेटा अहिरावण--पाताल लोक से आया है ।
निश्चय अँधियारी का कौतुक--उसने ही यहाँ रचाया है ॥
मेरे स्वरूप में आ—वह ही, प्रभुवर को उठा ले गया है ।
दुखभंजन को इस भाँति छीन, दुख हमको दुष्ट दे गया है ॥
तुमसे भी हे वीरवर, खेल गया वह चाल ।
पृथ्वी पर जो थे उन्हें पहुँचाया पाताल ॥"

चीत्कार कर कपि बोला-हैं ? पाताल ।
तब तो टूटा शीश पर अपने शल विशाल ॥"
जाम्बुवान ने उसी क्षण कहा सगर्व पुकार ।
"उत्तर दगे चाल का उसकी पवनकुमार ॥
विपत् पड़े पर सदा ही किया इन्होंने काम ।
बलदाता निर्बलों के हैं यह ही बलधाम ॥"
यह कहकर बजरङ्ग पर दृष्टि डाल गम्भीर ।
इस प्रकार कहने लगा फिर वह बूढ़ा वीर—
"जागो जागो, हे रामदूत, केसरी सुवन, जागो-जागो ।
हम सबकी जीवन रक्षा को-मारुतनन्दन जागो-जागो ॥
रात ही रात में बूटी ला, लक्ष्मण को प्राण दिए तुमने ।
जो काम पवन कर सकता है-वह पवनकुमार किए तुमने ॥
जब-जब भी दुख के अवसर पर, सारा कपिदल निरुपाय हुआ ।
अतिखिन्न हुआ, अति भीत हुआ, असमर्थ हुआ, असहाय हुआ ॥
तब-तब तुमने महावीर, सबमें नवजीवन डाला है ।
तुम वह प्रकाश हो भूतल के, जिसका रवि पर उजियाला है ॥
लेते ही नाम-पवनसुत का-असुरों का दल हिल जाता है ।
गर्जन वातात्मज का सुनकर-पृथ्वीमण्डल हिल जाता है ॥
फिर आज सुनाओ गाज वही-जीवित यह कीश समाज रहे ।
लङ्का में हो श्रीरामराज, वानर मण्डल की लाज रहे ॥
निज प्रभु को नहीं छुड़ाया तो-धिक्कार सभी चतुराई पर ॥
उपकार वही तो सच्चा है-मर जाएँ विपत् पराई पर ॥
वैसे तो जीवों का जग में रहता ही गमन आगमन है ।
दे जीवनदान दूसरों को-उनका ही जीवन जीवन है ॥

## * गाना *

जाओ जाओ, हे अञ्जनीनन्दन, करो पूर्ण यह काम ।
सीता पर जब संकट था तो क्षण में दिया निवेर ॥
सीतापति के संकट पर अब लगा रहे क्यों देर ?
धाओ,धाओ, हे संकटमोचन, बुला रहे हैं राम ॥ १ ॥
बन में होता सिंह एक तो घर मे एक सुजान ।
इसी भांति इस रण में तुम हो– वीर एक हनुमान ॥ २ ॥

—: • :—

जिसका आदर सदा से करते थे बजरङ्ग ।
उसी वृद्ध ने आज फिर उनमें भरी उमङ्ग ॥
जाम्बुवान के वाक्य थे–जीवन सुधा–समान ।
नवजीवन-सा प्राप्तकर गर्जे श्रीहनुमान ॥
निश्चय ही थे यह महावीर, इनमें प्राकृतिक महाबल था ।
शारीरिक बल फिर आत्मिकबल उसपर फिर रामकृपा-बल था ॥
हृदयस्थित इष्टदेवता ने—उत्साह रूप संकेत किया ।
झोकों से पवनदेव ने भी "जाओ बेटा" आदेश दिया ॥
'जो आज्ञा' साथियों से बोले कपि बलधाम ॥
'कितनी सी है बात यह कौन बड़ा है काम ॥
जिन प्रभु की कृपा सदा जन से–साहस के कार्य कराती है ।
फिर एक बार नूतन पथ पर–इस सेवक को ले जाती है ॥
वे कृपानिधान भक्तवत्सल—जन से जो काम कराते हैं ।
इसका रहस्य केवल यह है–भक्तों का मान बढ़ाते हैं ॥
अच्छा, प्यारो दो, विदा–सोत्साह सोल्लास ।
राम-कार्य के हेतु फिर चला राम का दास ॥
दूर हुए कपि-कटक से जब श्रीपवनकुमार ।
बार-बार उठ रहे थे मग में यही विचार—

## * गाना *

"पथिक चल दूर नहीं है ठाम ।
साहस जिसने नहीं गँवाया जीता वह संग्राम ॥ पथिक० ॥ १ ॥
जान रहा हैं समझ रहा है इष्ट सिद्ध गुरु क्या है ।
सत्पथ पर चलने वाला ही—सफल सदैव हुआ है—
उसी ने पाए अपने राम ॥ पथिक० ॥ २ ॥
आगे बढ़ना ही जीना है, रुक जाना मरना है ।
एक एक पल मूल्यवान है, कर जो कुछ करना है ॥
यही है अवसर 'राधेश्याम' ॥ पथिक० ॥ ३ ॥

—::—

गीधों से वृतान्त सब सुनकर भले प्रकार ।
अहिरावण के नगर में पहुँचे पवनकुमार ॥
मकरध्वज नामक, वीर एक, उस रजधानी का रक्षक था ।
हनुमान राम के पायक थे वह अहिरावण का सेवक था ॥
यह मँझे खिलाड़ी थे रण के, वह अभी युवक नौसिखिया था ।
फिर भी निज बल में, साहस में कसवाला, बाँका योद्धा था ॥
रोक इन्हें उसने कहा निज प्रभु का आदेश—
"आज किसी का नगर में होगा नहीं प्रवेश ॥
आज्ञा स्वीकार न की तो फिर उत्पात पूर्ण हो जाएगा ।
बालक द्वारा हे वृद्ध कीश अभिमान चूर्ण हो जाएगा ॥
इसलिए यहाँ से लौट जाउ वानर के नाते कहता हूँ ॥
मैं मकरध्वज कहलाता हूँ–कपिवर हनुमत् का बेटा हूँ ॥"
'हनुमत् के तुम पुत्र हो !" चौंके हरि के भक्त ।
"हूँ" नहीं मैं तो कभी नारी में अनुरक्त ॥
मकरध्वज बोला--"वह हनुमत् जो जला चुके हैं लंका को ।
हनुमान बीच में गरज उठे—क्यों बढ़ा रहा है शंका को ॥

मैं ही हनुमत् हूँ इधर देख, प्रभु का आज्ञाकारी हूँ मैं ।
कैसा बेटा ? किसका बेटा ? जब बाल ब्रह्मचारी हूँ मैं ॥
हनुमत् के यह वाक्य सुन,, काँपा वह तत्काल ।
तन के सारे रुधिर में आया एक उबाल ॥
रहा देखता पिता को, झुका दिया फिर माथ ।
फिर पद-रज लेने-लगे उसके दोनो हाथ ॥
बोला—"कर लंकादहन पिता जब जल में पूँछ बुझाई थी ।
उस समय पसीने की धारा सागर में बहकर आई थी ॥
मछली ने उसका पान किया, रह गया गर्भ तत्काल उसे ।
मिल गया विचित्र दैव-क्रम से-यह मकरध्वज-सा लाल उसे ॥
"निश्चय बात बिचित्र है"-हँसे राम के दूत ।
"फिर अचरज यह तरुण भी शीघ्र हो गया पूत ॥
वह बोला--अहिरावण प्रभु का मेरे पर कृपा-भार है यह ।
देवी मैया है सिद्ध उन्हें उनका चमत्कार है यह ॥
स्वामी का है आदेश उधर, आदर इस ओर पिता का है ।
असमञ्जस में है मकरध्वज, यह सोच रहा करना क्या है ॥
उस ओर कुआँ है दीख रहा, इस ओर दीखती खाई है ।
है ऐसे ठौर खड़ा सेवक--पथ देता नहीं दिखाई है ॥
पितृदेव, आप बतलाएँ, इस समय धर्म क्या है मेरा ।
हे कर्मशील, हे कर्मवीर, कर्तव्य-कर्म क्या है मेरा ?"
बेटे में कर्तव्य की, देखी जभी हिलोर ।
प्रेम—दृष्टि से बाप ने निरखा उसकी ओर ॥
कर्तव्य पूछते हो बेटा ? तो सुनो बाप सन्तुष्ट हुआ ।
तुम निश्चय ही मेरे सुत हो, यह सिद्ध हुआ, यह पुष्ट हुआ ॥

हनुमत् ही का बेटा ऐसा गम्भीर प्रश्न कर सकता है।
कर्तव्य-विपक्षी तक से भी-होकर बेधड़क पूँछता है॥
मैं महावीर कहलाता हूँ, तो तुम भी युवक वीरवर हो।
मैं पक्का सेवक हूँ प्रभु का, तो तुम भी उसके किंकर हो॥
तुम मुझसे पूछ रहे हो यह इस समय धर्म क्या है मेरा?
मैं तुमसे पूछ रहा हूँ यह कर्तव्य कर्म क्या है मेरा॥
मैं ही कहदूँ? निर्णय कर दूँ? अच्छा तो सुनो ध्यान देकर।
अहिरावण को सँहार हनुमत् जाएगा निज प्रभु को लेकर॥
इसलिए धर्म है मेरा यह-"पहुँचूँ मैं भीतर नगरी के"।
जब लक्ष्य भिन्न दोनों का है-तो कैसा बाप और बेटा।
दो वीरों में मल्लयुद्ध—होगा बस इसी ठौर बेटा॥
अब शक्ति करेगी न्याय कौन, निज जननी का नीका जन है।
तुम फिर भी मछलीनन्दन हो, हनुमान अञ्जनीनन्दन है॥

## ❀ गाना ❀

पिता का पुत्र ही से सामना है!
प्रकृति में क्या नया बानक बना है॥
उधर प्रभु को चुरा कर दुष्ट लाया।
इसी अन्याय पर तो रण ठना है॥
इधर प्रभु को छुड़ाने दास आया-
हृदय में हर्ष है साहस बना है॥
विदित होता है "राधेश्याम" इससे।
वही जीतेगा जिसको जीतना है॥"

—: o :—

आगे बढ़ अब भिड़ गए प्रलय और भूचाल।
दोनों ही थे केसरी-दोनों शैल विशाल॥

मारुत-सुत, मारुत-सुत का सुत, दोनों भट जीवट वाले थे ।
कसवाले थे, बलवाले थे, मतिवाले थे, मतवाले थे ॥
कर से कर, छाती से छाती माथे से माथा लड़ता था ।
पृथ्वी पर—एक दूसरे को लाने का दाँव ढूँढता था ॥

'जय राघव' की गर्जना कर उट्ठे हनुमान ।
इस गर्जन से निमिषभर सहमा वह बलवान ॥
वह निमिष था, उसी क्षण—जीते राघवदास ।
मकरध्वज महि पर गिरा गिरकर हुआ उदास ॥
बाँध दिया बजरङ्ग ने उसको वहीं तुरन्त ।
पुर में किया प्रवेश फिर कह जय राघवचन्द्र ॥
देवी-मन्दिर पर उधर मची हुई थी धूम ।
नाच रहे थे असुरगण मठ के चहुँदिश घूम ॥
विमल चन्द्र को दूर से, जैसे तके चकोर ।
त्यों ही कपि के दृग गए रामचन्द्र की ओर ॥
दोनों प्रभुओं को कियामन ही मन अभिवाद ।
मन ही मन अनुभव हुआ प्रभु का आशीर्वाद ॥
देखा चारों ओर फिर दोनों नयन पसार ।
पूजा-हित था वहाँ पर विविध वस्तु-भण्डार ॥
काम बनाने को बढ़े काम-रूप हनुमान ।
एक फूल में छुप गए होकर मराक-समान ॥
देवी के सिर पर चढ़ा जैसे ही वह फूल ।
फूल गए बजरङ्ग कुछ—जान समय अनुकूल ॥

मानसिक प्रार्थना की मैया, फिर आज लाज रखनी होगी ।
सिर पर चढ़ने की अशिष्टता—इस समय क्षमा करनी होगी ॥

सीता-स्वरूप में तुमने ही—वरदान शक्ति का दिया मुझे ।
अति पावन मनभावन प्रसाद श्रीराम-भक्ति का दिया मुझे ॥
माता की जिस पर दृष्टि सदा, वह सुत निर्भीक खेलता है ।
आजाता कभी गोद में है तो कभी शीश पर चढ़ता है ॥"

जगदम्बा ने यहाँ भी रक्खी सुत की आन ।
स्वयं धँस गईं तले को तजकर उच्चस्थान ॥
अथवा माँ ने पुत्र को देकर भारी भार ।
अपने ही आकार में उसको दिया उभार ॥

अब जितना भी मिष्टान और पकवान्न पुजापा आता है ।
देवी स्वरूप में देवा वह मुँह फाड़-फाड़कर खाता है ॥
राक्षस विलोक यह चमत्कार—समझे देवी जी निकट हुईं ।
ले रहा चढ़ावा हँस हँसकर साक्षात् आज ही प्रकट हुईं ॥

अभी नाच जो रहे थे, हो होकर उन्मत्त ।
अब आरति करने लगे मतवाले मदमत्त ॥

## ❀ गाना ❀

"जय देवी माता, जय-जय देवा माता ।
चरण शरण जो आता चरण-शरण जो आता मनवांछित पाता ।
जय—जय देवी माता ॥
वरदायिनी हो सुखदायिनी हो मंगलकरणी कि माता हो मंगलकरणी ।
सकल, चराचर की हो सकल चराचर की हो दुःख—दारिद हरणी ॥
जय—जय देवी माता,
दुर्गा, जया, जयन्ती माता गौरी कल्याणी कि माता गौरी कल्याणी ।
अभिमत फल-बल-दात्री अभिमत फल बल दात्री, देवी शर्वाणी ॥
जय—जय देवी माता

—•—

अहिरावण अब देखकर--राम-लषण की ओर ।
हँसा ठहाका मार, फिर बोला वचन कठोर ॥
"तुम अबतक यही जानते हो देवी की बलि को आए हैं ।
कुछ और बात भी है, कहदें ? किस हेतु तुम्हें हम लाए हैं ॥
रावण से तुमने रार ठान सिर अपने बहुत उठाए हैं ।
वे सिर देवी की भेंट चढ़े-इस हेतु तुम्हें हम लाए हैं ॥
अभिमान तुम्हारा ही तुमको-यह भारी दण्ड दे रहा है ।
रावण है भिड़ने का बदला-अहिरावण आज ले रहा है ॥"
लषणलाल के युगल दृग हुए क्रोध से लाल ।
कहा-"मौन हो अरे खल, बजा रहा क्यों गाल ॥
सीता देवी के कारण ही रण हम रावण से करते हैं ।
रावण से भी क्यों ? यों न कहें-उस दुष्ट चोर से लड़ते हैं ।
तूने भी चोरी की हमसे यह कथन सिद्ध हो जाता है ।
चोरों का साथी निश्चय ही-गठकटा सदा कहलाता है ॥
जब मन में भाव दूसरा है-तो देवी आराधन कैसा ?
बदले की आग हृदय में है तो बलि-प्रदान पूजन कैसा ॥
देवी माँ स्वयं समझती हैं-इस अर्चन के भीतर छल है ।
जब छल है तो यह अहिरावण, यह असुर आप ही निर्बल है ॥
सीता के बल पर हमें पूरा है विश्वास ।
तू क्या कोई भी असुर दे न सकेगा त्रास ॥
जो हाथ उठाएगा खाँडा-वह हाथ आप गल जाएगा ।
सीता के सत् की ज्वाला में--पापी सदेह जल जाएगा ॥
इस कारण तुझे चिताते हैं-तू पतिव्रता का शाप न ले ।
रावण की नाईं अहिरावण अपने माथे पर पाप न ले ॥

यह ही अवसर है जाग, चेत अन्यथा बहुत पछताएगा ।
घर-सहित-कुल-सहित, सैन्य सहित अति शीघ्र नष्ट होजाएगा ॥
यह देवी—यह देवी मैया जिनका तू पूजन करता है ।
ले जिनकी आड़ आज मठ में हिंसा का अर्जन करता है ॥
वे जान रहीं—सब समझ रहीं, अन्याय नहीं कर सकती हैं ।
सीता—सी सती साध्वी का—सौभाग्य नहीं हर सकती हैं ॥
इसलिए फिर समझ यदि तेरी इच्छाएँ पाप कमाएँगी ।
तो अभी यही देवी तुझपर चण्डी बनकर चढ़ आएगी ॥

सुने सुमित्रातनय के इस प्रकार जब बैन ।
अहिरावण कहने लगा कर अति टेढ़े नैन ॥

बूढों की कही कहावत वह इस समय ध्यान में आती है ।
रस्सी तमाम जल जाती है—पर ऐंठ न उसकी जाती है ॥
मरने को खड़ा हुआ है पर—अपनी ही हाँके जाता है ।
आचुका काल के मँह में है फिर भी बकवास लगाता है ॥
अच्छा तू अकड़ दिखाए जा मँह तेरे मुझे न लगना है ।
जो यमपुर जाने वाला है सम्वाद न उससे करना है ॥
इतना कहदूँ—तुम दोनों ने मरने की घड़ी आ रही है ।
इस कारण देवी के सम्मुख—पूछी यह बात जा रही है ॥
अन्तिम अभिलाषाएँ क्या हैं ? उनको वर्णन कर सकते हो ।
अन्यथा प्यारा हो जो तुमको, उसका सुमिरन कर सकते हो ॥

राघवेन्द्र रघुवंशमणि थे इस क्षण तक मौन ।
अब बोले—"करद प्रकट अतिशय प्यारा कौन ?—
यों तो भाई श्रीभरत लषण, राघव की युगल भुजाएँ हैं ।
केकयी कोशल्या दोनों—जीवनदात्री माताएँ हैं ॥

पर आज ध्यान में हनुमत् है-सीता का जो कि दुलारा है ।
सुमिरन इस समय उसी का है, वह ही प्राणों का प्यारा है ॥
देवी की आँखें भरीं पुलकि उठा सब गात ।
कहते कहते रुक गई—मानो वे कुछ बात ॥
अहिरावण समझा—इन्हें देर नहीं स्वीकार ।
खाँडा निज कर में उठा—बोला यूँ ललकार ॥
"मैया कुछ दुखी हो रही हैं इस कारण देर नहीं अच्छी ।
बलि देने का अवसर आया, अब व्यर्थ अबेर नहीं अच्छी ॥
है धन्य तुम्हारा यह शरीर, जो देवी की बलि चढ़ता है ।
ऐसा अच्छा संयोग भला, क्या कहीं सहज मिल सकता है ॥
देवी अब मुस्का पड़ी, खुद को सकीं न रोक ।
मुस्काए रघुनाथ भी, यह आश्चर्य विलोक ॥
धीरे-धीरे मूर्ति का हुआ विचित्राकार ।
प्रभु की आँखों से मिला, उन नयनों का तार ॥
तब फिर प्रभु बोले—"हाँ सुनले हनुमत् हाँ आज सहारा है ।
सुमिरन इस समय उसी का है, वह ही प्राणों का प्यारा है ॥
हनुमत् के होते राघव को कोई भी मता न सकता है ।
रावण-अहिरावण तो क्या है, यम तक भी डरा न सकता है ॥
राक्षस, झुँझला ही पड़ा सुन रघुवर के बोल ।
उत्तर में कहने लगा अपना खाँडा तोल—
हनुमत् ! हनुमत् कैसा हनुमत् ! कपिदल में वह तो सोता है ।
तुम दोनों उसको रोते हो, वह तुम दोनों को रोता है ॥
भावना छोड़ दो सीता की, सत् उसका यहाँ न आएगा ।
संस्मरणों का भी मरण अभी सिर कटते ही हो जाएगा ॥

इस कारण फिर कहता हूँ मैं-बड़भागी ही यों मरता है ।
ऐसा अच्छा संयोग भला, क्या कहीं सहज मिल सकता है ?"

अट्टहास कर उठीं अब-देवी भले प्रकार ?
इधर लषण रघुनाथ भी हँसे ठहाका मार ॥
खाँडा-ऊपर को उठा बढ़ा जभी खलनाथ ।
तभी किसी के हाथ ने पकड़ा पीछे हाथ ॥
देखा सबने खड़े हैं—वीर अजनीलाल ।
"जय राघव की गरज से काँप उठा पाताल ॥
प्रकटरूप में दास ने प्रभु को नाकर माथ ।
लात मारकर भूमि पर गिरा दिया खलनाथ ॥

राक्षस दौड़े चारों दिशि से, लें अभी उठा अहिरावण को ।
लाँगूल बढ़ा तब कपिवर ने, झट बाँध दिया अहिरावण को ॥
चिर चुन-चुन चपल निशचरों को चुटकी में चुटपट करते थे ।
जगपति के सम्मुख हो कपपति,जग की पीड़ा को हरते थे ॥

## ❀ गाना ❀

बजरंगी जंगी दुष्टों को दलता है अकेला ।
नए चाव से, नए से, नए ताव दाँव से ॥
करता मुठभेड़, घेर—घेर के अटकाव से ॥ बजरंगी जंगी० ॥
कभी मुक्कों से यमपुर पठाता उन्हें ।
कभी लातों से महि पर सुलाता उन्हें ॥
खलदल में खलभल हलचल डालके उत्साव से ॥ बजरंगी जंगी० ॥
कभी माथों से माथे लड़ा मारता ।
कभी ऊपर उठाकर, गिरा मारता ॥
राघव की जय प्रतिवार पुकार सरल स्वभाव से ॥ बजरंगी जंगी० ॥

— ० —

कुछ हत आहत हुए, कुछ आगे मनुजाद ।
प्रभु चरणों को दास ने तब देखा साह्लाद ॥

बन्धन से लाँगूल के—अहिरावण को खोल ।
बोले उससे—"दुष्ट उठ खाँड़े को अब तोल ॥
हाँ सिद्धि दिखा माया दिखला, दिखला कितना बल रखता है।
हनुमत् चोरों की भाँति नहीं, वीरों की नाईं हनता है ॥
देवी मैया सच्ची है तो सच्चा ही न्याय चुकायेंगी ।
राक्षस, तेरी ही बलि लेने मठ में वे फिर आजायेंगी॥
सचमुच सच्चे टेर की हुई चमत्कृत पूर्ति ।
नीचे से ऊपर उठी जगदम्बा की मूर्ति ॥
तब जग जननी 'जय माता'—राघव के दास पुकार उठे ।
निश्चर का खाँडा निज करले, इस भाँति वाक्य उच्चार उठे ॥
है धन्य आज तेरा शरीर जो देवी की बलि चढ़ता है ।
ऐसा अच्छा संयोग भला, क्या कहीं सहज मिल सकता है ॥
फिर राघवेन्द्र की ओर देख, बोले—'स्वामी क्या आज्ञा है ।
देवी की भेंट करूँ इसको—यह मुझ सेवक की इच्छा है ॥
लंका के दहन-समय हे प्रभु रावण-वध को लपका था मैं ।
'रघुनाथ संहारेंगे इसको' इस कारण ठहर गया था मैं ।
रावण न सही—अहिरावण को इन हाथों द्वारा मरने दो ।
बानक जब अचानक है—तो जन को मन का करने दो ॥
'संहारो" संकेत में कह उठे श्रीराम ।
पहुँच गया पलमात्र में, अहिरावण प्रभु-धाम ॥
देवी-पूजन तब किया सबने भले प्रकार ।
गूँजा हर्षोल्लास से—गुप्त, प्रकार संसार ॥
जन पर हुई दो दिशा से वरद हस्त की छाँव ।
छुए जभी माँ के चरण, और राम के पाँव ॥

प्रभु बोले—सीता-लक्ष्मण को प्राणों का बलिदान दिया तुमने ।
पर आज राम राघव को भी—जीवन हनुमान दिया तुमने ॥
अब तुम उस पद पर पहुँच गए—है जहाँ द्वैत का खेद नहीं ।
होगए राम हनुमान् एक हनुमान् राम में भेद नहीं ॥

स्वामी का देखा जभीं यह उदार व्यवहार ।
गिरे चरण में पुलक कर, सेवक पवनकुमार ॥
शंकर विह्वल होगए जब यह कहा प्रसंग ।
समझ भवानी भी गईं उनके तन का रंग ॥

पौराणिक जगत् जानता है रुद्रावतार बजरङ्गी हैं ।
अथवा बजरङ्गी चोले में, यों समझो स्वयं रुद्र ही हैं ॥
जब आई ध्यान अवस्था वह, तो गद्‌गद् हुए महेश्वर भी
पद समानता का देने में झिझके न इसी से रघुवर भी ॥

## ❀ गाना ❀

आज भारी जयकार है—कपिदल में ।
छाया आनन्द अपार है—कपिदल में ॥
सिन्धु में है उत्साह हिलोर—पवन भी बहीं सुगन्धि बटोर ।
देवमण्डल हो हर्ष विभोर—पुष्प बरसाता प्रभु की ओर ॥
राम-नाम की गुञ्जार है—कपिदल में ।
आज भारी जयकार है—कपिदल में ॥

—:०:—

मकरध्वज को मुक्त कर, हर्षे दयानिधान ।
अहिरावण का कर दिया उसको राज प्रदान ॥
हनुमत लक्ष्मण के सहित लौटे जब सुखकन्द ।
नव जीवन पा, भालु कपि, नाच उठे सानन्द ॥
अकस्मात् आई जहाँ दुख की काली रात ।
उदल हुआ अब वहीं पर सुख का स्वच्छ प्रभात ॥

अहिरावण का जब सुना-रावण ने वृत्तान्त ।
घूम गया मस्तिष्क फिर चित फिर हुआ अशान्त ॥
उत्पन्न मूल में होने से, जिस सुत का सिन्धु-प्रवाह हुआ ।
जीवित जो दैवयोग से रह विहवावल कर नरनाह हुआ ॥
उस "नारान्तक को सैन्य सहित बुलवाया अब लंकेश्वर ने ।
भीषण रण किया कई दिन तक वर-प्राप्त वीरवर निश्चर ने ॥
नारद के द्वारा हुआ, गुप्त भेद जब ज्ञात—
तभी कही सुग्रीव ने, हनुमत् से सब बात ॥
"मेरे सुत दधिबल के हाथों बध होगा इस नारान्तक का ।
विधि वाक्य अटल हैं इसी हेतु, निष्फल रण रहा आजतक का ।
जैसे संजीवन लाए थे दधिबल को लाओ अब हनुमत् ।
तब द्रोणागिरी पर धाए थे धवलागिरी जाओ अब हनुमत् ॥
हनुमत् ही पर फिर पड़ा नए कार्य का भार ।
माथ नवा रघुनाथ को, चले बुद्धि-आगार ॥
वही एक ही टेक थी-वही-एक ही ध्यान ।
सोच रहे थे मार्ग में इस प्रकार हनुमान—

❀ गाना ❀

"भगवान, अपने दास को बलवान बना दे ।
लेना है और काम—तो, अब शक्ति बढ़ा दे ॥
मैं हूँ सदा अपूर्ण, तू परिपूर्ण सदा है—
भिक्षा मुझे भण्डार से कुछ और दिलादे ॥
तेरे ही संकेत से भव—सिन्धु में कूदा ।
मल्लाह मेरे तैरना मुझको भी सिखा दे ॥
कर जोड़ बार-बार यह बिनती है 'राधेश्याम' ।
संसार दिखाया है तो—अब पार दिलादे ॥

—: o :—

दधिबल को लाए जभी, महावीर बलधाम ।
असफल जो होरहा था—सफल हुआ संग्राम ॥
नारान्तक मारा गया—कपिपति-सुत के हाथ ।
'विन्दुप्रिया' उसकी त्रिया सती हो गई साथ ॥
घेर लिया कपिवृन्द ने हनुमत् को तत्काल ।
बोले—"नेता आज से हुए अंजनीलाल ॥"

कपिपति से बोले—जाम्बुवान—"तुमने न किसी को संहारा ।
पर चलो—तुम्हारे बेटे ने रावण का बेटा तो मारा ॥
फिर हनूमान जी से बोले—"निश्चय तुम वीर-विजेता हो ।
हम भी कहते हैं—अब से तुम इस रामादल के नेता हो ॥"

धन्य वास्तव में हुए उस क्षण पवनकुमार ।
पहनाया रघुनाथ ने, निज कर से जब हार ॥
एक नहीं—सौ भी नहीं—नहीं सहस-विस्तार ।
कोटि, कोटि ही कण्ठ से-निकला यह जयकार—

## ❀ गाना ❀

जय मारुतिनन्दन, जय जय मारुतिनन्दन ।
संकट मोचन, संशय-मोचन, पाप ताप—मोचन ॥
जय—जय मारुतिनन्दन ॥

रिपु-मद-गञ्जन, खल मद-गञ्जन, दशमुख-मद गञ्जन ।
भय—भ्रम—भञ्जन, भेद—विभञ्जन भूमि-भार-भञ्जन ॥
जय—जय मारुतिनन्दन ॥ १ ॥

प्रभु-मनरञ्जन, कपि वन-रञ्जन सुर-नर-मुनि-रञ्जन ।
'राधेश्याम' नयन अञ्जन ओज तेज वर्द्धन ॥
जय—जय मारुतिनन्दन ॥ २ ॥

—: ० :—

❀ इति ❀

# श्रीराम-कथा

संख्या—२०

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है

( लङ्का-काण्ड )

लेखक—

नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—

कीर्तनकलानिधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न

पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक —

उन्हत्तरवाँ संस्करण ] सन् १९८२ [ मूल्य १)

# प्रार्थना

राम, जनमनरञ्जन राम खलदलगञ्जन राम !
भवभयभञ्जन राम, सीताराम सीताराम ॥
जय जग-वन्दन, दुष्ट-निकन्दन !
दशरथनन्दन राम, सीताराम, सीताराम ॥
रघुकुल के पति राम, निर्बल के बल राम ।
निर्धन के धन राम, सीताराम, सीताराम ॥
वृथा की छोड़ के सब धूमधाम 'राम' कहो ।
समय जितना भी मिले सुबह शाम 'राम' कहो ॥
जो तुमको चाहिए आराम – 'राम–राम' कहो ।
बड़ा है काम यही—"राधेश्याम" 'राम' कहो ॥
राम, अपने तो एक राम, जय–जय सीताराम ।
भजले रे मन राम, सीताराम, सीताराम ॥

कुम्भकरण घननाद का जब हो चुका सँहार ।
रावण लड़ने को स्वयं हुआ तभी तैयार—
बोला निज दल से—"हुआ, अबतक जो संग्राम ।
उसका लंका के लिए बुरा रहा परिणाम ॥
मेरा यह सिद्धान्त है—उचित नहीं विश्राम ।
विना विजय के जिए तो माँ का दूध हराम ॥

पृथ्वी पर असुरों का मण्डल 'विजयी-मण्डल' कहलाता है ।
फिर कारण क्या है—वानरदल उस दल को दलता जाता है ?
मर जाएँ रण में कुम्भकरण, घननाद, नरान्तक, अहिरावण ।
फिर भी दशकन्धर शान्त रहे ! सोचे न ज़रा इसका कारण ॥
माना कि लड़ाई की उमङ्ग निश्चरदल में है बढ़ी हुई ।
कोई भी हृदय सरोवर पर है पोचपने की चढ़ी हुई ॥
फिर इधर सन्धि के नित्य नए—आन्दोलन आप उठाते हैं ।
बेसमझे विद्रोही होकर—वैरी से मिलते जाते हैं ॥
हुल्लड़पन को जब छोड़ोगे तब बात समझ में आएगी ।
पीछे जाएगा सन्धिपत्र, पहले स्वतन्त्रता जाएगी ॥
फिर हानि चुकाने की भी तो विपदा पर विपदा आएगी ।
सोने की लङ्का—सोने से—वीरो, सूनी हो जाएगी ॥

इसीलिए यह उचित है—हृदय करो बलवान ।
मचने दो रणभूमि में—आज महा घमसान ॥
खाँड़े, परसे, तोमर, मुग्दर, शर-धन्वा, भाले ले लो तुम ।
अस्त्रों शस्त्रों से मज्जित हो, रण में आगे बढ़ खेलो तुम ॥
बोलो सब—हर हर महादेव, चढ़ जाओ दुश्मन के दल पर ।
निज जन्मभूमि की आन-बान क़ायम रक्खो अपने बल पर ॥
मैं भी चलता हूँ साथ--साथ, धावा आँधी सा करना है ।
विजयी होकर अब जीना है, वीरभूमि पर मरना है ॥

## * गाना *

—०—

रणवीर ! चलो, कुलवीर ! चलो, दलवीर चलो, बलवीर ! चलो ।
चनेच्योले से चाबो, चपेटों की चोटों से कीशों को रीछों को चीर धरो ॥
झोंक दो अपने को—लंका के बचाने के लिए ।
रास्ता घर में न दो गैर को आने के लिए ॥
खंग का पानी है अब पीने पिलाने के लिए ।
यही सागर है—सिपाही के नहाने के लिए ॥
पानी के स्थान में रक्त का पान हो, बैरी को युद्ध की भूमि मसान हो ।
धारा प्रवाह से आगे बढ़ो ॥"

—: ० :—

इस प्रकार सजकर चला, निश्चर कटक विशाल ।
पृथ्वी थर्राने लगी, दहल गए दिक्पाल ॥
काली आँधी, काले घन-सा आगे को बढ़ता जाता था ।
निशि-सी करदी निश्चरदल ने, दिन में दिनकर न दिखाता था ॥
रावणदल रावण के सँग में—जब रामादल तक आ पहुँचा—
तब 'जय कोशलाधीश' कहकर कपिकटक सामने आ पहुँचा ॥
यह रण बाँकुरा रामादल जब खलभलकर खलदल दल उट्ठा ।
रावण के आगे रावण-दल—पीछे को हटा, दहल उट्ठा ॥

रावण ने देखा जभी, निज दल का यह हाल ।
तब तेवर तिर्छे तने तीर तके तत्काल ॥
तीखे तीरों ने किया—जाते ही यह काम ।
कुहरेमा फटने लगा—बानर-कटक तमाम ॥
देखा जब बजरङ्ग ने कपिदल है बेचैन ।
तरुण-किरण-सम उभी क्षण अरुण होगए नैन ॥
पर्वत का प्रबल प्रचण्ड खण्ड, हनुमत के कर से छूट गया ।
थरथरा उठा निशचर समूह, निशचरपति का रथ टूट गया ॥
सन्नाटे में दसकन्धर है, अचरज में असुरों का दल है ।
'हनुमत के हाथों का फेंका—पत्थर रखना इतना बल है' !!
मान गया रावण, कहा—"धन्य तुझे है कीश !
खुश है तेरी शक्ति पर, लङ्कापति दससीश ॥
सुर, असुर, नाग,नर यक्षों में, इतना साहस देखा न सुना ।
रावण के रथ तोड़ सके—यह, बल यह कहँ देखा न सुना ॥
यह आज प्रथम ही अवसर है,जो तूने रथ को तोड़ा है ।
जितना सम्मान करूँ तेरा, वह सब इस जय पर थोड़ा है ॥"
कहा अञ्जनीलाल ने—"हे जग विजयी वीर !
मैं बानर किस योग्य हूँ ? जो कुछ है रघुवीर ॥
यह सारा खेल उन्हीं का है, जो जग को खेल खिलाते हैं ।
जब ग्रीष्म बहुत गरमाता है,तो वर्षा ऋतु ले आते हैं ॥"
रावण बोला—"मैं समझ गया, यह ब्रह्मचर्य ही का बल है ।
तुम बाल ब्रह्मचारी हो कपि, यह ही तुममें सच्चा बल है ॥
अच्छा, अब मेरी इच्छा है—तुम मेरे साथी हो जाओ ।
रणनायक की पदवी लेकर, मेरे रणमन्त्री हो जाओ ॥

हनुमत् ने कहा—"क्षमा करिए, पदवी न मान की सूचक है।
कोरे गुमान की सूचक है मिथ्याभिमान की सूचक है॥
जो करनी करने वाले हैं, वे कहते कब हैं ?— करते हैं।
'हम रण के सच्चे वीर बने, रणवीर इसी पर मरते हैं॥'

यह उत्तर सुन दशबदन, लज्जित हुआ अपार।
पानी-पानी होगया, था—जो पानीदार॥

'अच्छा देखूँ तो बल तेरा—यह कह हनुमत् से चिपट गया।
रघुवर का प्यारा कपिवर भी आगे बढ़ उससे लिपट गया॥
अब ताल ठोंक कुश्ती ठहरी, दोनों ही योद्धा भिड़ते हैं।
होता है ज्ञात दूर से यह कज्जल सुमेरु-गिरि लड़ते हैं॥

झपट झपट झलझला झट, झूम झाम झकझोर।
दाँव पेंच करने लगे —दोनों दोनों ओर॥

दोनों ही बाँके योद्धा थे, दोनों ही मल्ल गुमानी थे।
दोनों ही वीर केसरी थे, दोनों ही अति वरदानी थे॥
लड़ते लड़ते दोनों ही को—इक घण्टे का अवसर बीता।
इस जोड़-तोड़ का जोड़ लड़ा, कोई न गिरा, दिनभर बीता॥

लड़ते लड़ते थक गए, जब दोनों बलवीर—
इधर उधर को हट गए, होकर श्रमित शरीर॥
रावण बोला—"फैसला, हुआ नहीं हनुमन्त—
अच्छा मुक्का मारकर, करना है अब अन्त॥
रावण से बलवान् का, खाकर मुष्टिक एक।
एक हाथ हनुमान ने, दिया भूमि पर टेक॥
दशकन्धर लज्जित हुआ, देखा जब यह ढङ्ग।
इतने में कर गर्जना, बोल उठे बजरङ्ग॥

"तेरा बल निष्फल हुआ, राम-कृपा से आज ।
मेरा मुष्टिक देख अब-असुरों के सिरताज ॥
मुक्का मारा कीश ने, कह जब-"जय रघुनाथ ।
राक्षस मूर्च्छित हो गया, घूम गए दशमाथ ॥
कुछ क्षण रही अचेतना, फिर बोला दसशीश—
"जननी तेरी धन्य है—हे बलशाली कीश ॥
गन्धर्व, देवता, नर, किन्नर, मेरे बल से थर्राये हैं ।
पददलित किया मैंने उनको-जो मेरे सम्मुख आये हैं ॥
प्रत्येक वीर इस दुनिया का-बल मे मेरे आधीन हुआ ।
धिक्कार मुझे बलशाली हो, इस भाँति चेतना हीन हुआ ॥"

कपि बोले-"तुझको नहीं मुझको है धिक्कार—
अब तक तू जीता रहा, खा मुक्के की मार ।
यदि मेरा मुक्का पड़ जाए तो पर्वत पिस जाए पल में ।
वह बल है मेरे मुक्के में-धरती धँस जाए रसातल में ॥
है खेद वही मुक्का खाकर तू मेरे सम्मुख जीवित है ।
तू क्यों लज्जित है दशकन्धर ? हनुमान स्वयं ही लज्जित है ॥

रावण बोला-"वानरे, तू करता क्या व्यङ्ग ?
आज नहीं तो फिर कभी कर दूँगा मद भङ्ग ॥
अब तो सायंकाल है, युद्ध हो गया बन्द ।
कल प्रभात-तुम सभी का काटूँगा भव फन्द ॥
हुआ दूसरा दिवस तो-रावण होकर क्रुद्ध ।
लगा दिखाने वीरता—कर नाना विध युद्ध ॥
काँप उठा वानर कटक, ऐसे छोड़े बान ।
लाशों से पटने लगा—वह रण का मैदान ॥

पतझड़ के मौसम में जैसे, वृक्षों के पत्ते झड़ते हैं ।
त्योंही रावण के बाणों से, बानर पर बानर गिरते हैं ॥
कपिदल में हाहाकार हुआ—"हे रघुकुलनाथ ! दुहाई है ।
निश्चर यह नहीं प्राणचर है, हम सब पर विपदा आई है ॥"

देखा जब कटने लगा—बानर-कटक तमाम ।
अपने आसन से उठे—रघुकुल—भूषण राम ॥

भक्तों की आरतवाणी को—सुन सकते हैं श्रीराम कहाँ ।
जब संकट आए दासों पर—तो स्वामी को विश्राम कहाँ ?
अपनी जिस आदत के कारण साकेत—क्षीरसागर छोड़ा ।
पृथ्वी पर नर होकर आए, वैकुण्ठ लोक-सा घर छोड़ा ॥
वह ही स्वरूप वह ही स्वभाव इस अवसर पर हो प्रबल उठा ।
शर भी निषङ्ग में कड़क उठे दिल भी पहलू में मचल उठा ॥
बोले—"हे लषण सँभल जाओ, लङ्कापति बढ़ता आता है ।
राक्षस, कपियों को कर परास्त—अब हम पर चढ़ता आता है ॥
यह ही अवसर तो हे लक्ष्मण, रघुवंशी कहलाने का है !
यह ही तो समय विश्व भर को सत् की जय दिखलाने का है ॥
रण में जब दुष्ट राक्षस के—वध करने का विधान होगा ।
वन में की हुई प्रतिज्ञा का तब पूरा अनुष्ठान होगा ॥"

यह कह शान्तस्वरूप ने निरखा तीर-कमान ।
मानो शान्त समुद्र में आया कुछ तूफ़ान ॥

जग के राजा ने सागर-तट, शिर जटाजूट उठकर बाँधा ।
कसकर निषङ्ग, गह धनुषबाण वल्कल का पट कसकर बाँधा ॥
तपसी प्रभुवर का क्षात्र वेष निरखा उस समय पवनसुत ने ।
छविपति की छवि का महालाभ लूटा उस समय पवनसुत ने ॥

वह शान्त रूप अद्भुत अनूप, वह जटाजूट, वह वीरासन ।
वह धनुष-बाण, वह भुज महान् रवि के समान वह दीप्त बदन ॥
जिनकी आँखों ने देखा है-वह ही यह लाभ जानते हैं ।
निज जन्म और निज जीवन को सुखदायक सफल मानते हैं ॥
गुस्से के चिह्न न थे मुख पर, प्रभु मन्द-मन्द मुस्काते थे ।
हाँ, खरी करारी चितवन से-रावण पर दृष्टि जमाते थे ॥

इतने ही में होगया दृश्य और का और ।
रावण कुछ बकता हुआ-आ पहुँचा उस ठौर ॥

हाथों से धनुष बाण छूटा जब सम्मुख आया रघुवर के ।
रह गया मूर्त की तरह खड़ा, दर्शन कर उन विश्वम्भर के ॥
पिछले जन्मों का ध्यान हुआ या नए लाभ पर दृष्टि पड़ी ।
लहलहा उठा वह सूखा वन-जब नयनामृत की वृष्टि पड़ी ॥

तब उस वैरी भक्त का प्रभु ने खींचा ज्ञान ।
भूला पिछली बात सब छाया फिर अभिमान ॥

बोला-"खेलो न आग से तुम, यह आग तुम्हें खा जाएगी ।
चिनगारी एक चटक उट्ठी तो प्राणों पर आ जाएगी ॥"
लक्ष्मण रह सके न मौन यहाँ, बोले-"थोथी यह धमकी है ।
सूरजवंशी अङ्गारे हैं चिनगारी क्या कर सकती है ?"

लषणलाल की बात सुन-गरज उठा दशभाल ।
बोला-"तो आओ लड़ो हे क्षत्री के लाल ॥"

राक्षस-द्वारा, आमन्त्रित हो-भगवान युद्ध करने उट्ठे ।
या भवपति, भूपति, त्रिभुवनपति, सब भूमि-भार हरने उट्ठे ॥
हाथों में धनुष-बाण लेकर तत्क्षण कौशल के भूप चले ।
भक्तों का कष्ट मिटाने को अति आतुर शान्तिस्वरूप चले ॥

दशकन्धर तो रथी था, पैदल थे रघुवीर ।
भक्त विभीषण देख यह–बोला वचन अधीर ॥

"हे नाथ, न पद में पदत्राण, चढ़ने को रथ भी पास नहीं ।
पैदल जीतें रथ वाले को, होता मुझको विश्वास नहीं ॥
जिसके बल से धरती कम्पित, पाताल-स्वर्ग थर्राते हैं ।
उसको किस बल पर, पैदल ही रघुनाथ जीतने जाते हैं ?"

"किस बल पर ?" कुछ मुस्करा-बोले आनँदकन्द ।
"रथ है हम पर धर्म का, इससे हम निर्द्वन्द ॥

## * गाना *

विजय होती है जिससे और ही वह रथ कहाता है ।
वह रथ, इन बाहरी बातों से रखता कुछ न नाता है ॥
है उसके शुद्ध पहिये शूरता और धीरता दोनों ।
विजय ही की ध्वजा वह रथ सदा निर्भय उड़ाता है ॥
दमन—बस, ज्ञान, परहित—नाम वाले चार घोड़े हैं ।
क्षमा—क्षमता की राक्षसों से रची रथ को चलाता है ॥
सुमति और दान असि परसा, हैं वर विज्ञान धन्वा है ।
नियम संयम हैं शर, निर्मल हृदय तर्कस सुहाता है ॥
भजन है सारथी उसका, कवच है विप्र पद पूजा ।
धुरा उस धर्म के रथ का सदा सत्पथ दिखाता है ॥
यह रण तो तुच्छ रण है, बात ही क्या इसकी 'राधेश्याम' ।
सखे, जिस पर यह रथ है, वह जगत् को जीत जाता है ॥

—: ० :—

शान्त विभीषण होगया, सुनकर यह उपदेश ।
इधर युद्ध करने लगे सीतापति अवधेश ॥

रावण कह उठा-"तुच्छ बालक, जब पैदल लड़ने आता है-
तब उससे रथ पर लड़ने में-लङ्का का नाथ लजाता है ॥
जिस तरह निहत्थे वैरी का, वध करना कर्म न योद्धा का ।
पैदल से रथारूढ़ होकर-लड़ना भी धर्म न योद्धा का ॥"
यह कहकर रथ को छोड़ दिया, बोला-"लो मैं भी पैदल हूँ-
चुट पुट करने के लिए तुम्हें-कल के दिन से मैं बेकल हूँ ॥"

आगे को अब बढ़ गया-खींच धनुष की डोर ।
घोर युद्ध होने लगा क्षण में दोनों ओर ॥

बाणों से बाण विंध रहे थे, ऐसा बानक था बना हुआ ।
मानो वितान-सा बाणों का, था समर-सभा पर तना हुआ ॥
पृथ्वी थी लाल न शोणित से-था लाल ग़लीचा मखमल का ।
रक्तस्थल बना रणस्थल वह, नर्तन था जहाँ वीरदल का ॥

पैदल प्रभु के बाण से गया दशानन हार ।
भूला पिछले वाक्य को, रथ पर हुआ सवार ॥
रथी देख दशशीश को-सुरगण हुआ उदास ।
तब अपना रथ इन्द्र ने भेजा प्रभु के पास ॥

इस तरह राम भी रथी हुए, लक्ष्मण भी पास विराज गए ।
कपि भालु गणों के विकट कटक रथ के चारों दिशि साज गए ॥
'श्रीराघवेन्द्र की जय' कहकर, ठन गई लड़ाई अब भारी ।
खिसआये हुए कीशदल ने वीरता दिखाई अब भारी ॥
शस्त्रों पर शस्त्र खटकते हैं, योद्धा से योद्धा जुटते हैं ।
रण-बाँके अङ्गद हनूमान् आगे बढ़-बढ़कर लड़ते है ॥
सब ओर यही आवाजें हैं-"काटो, छाँटो, पकड़ो खाओ ।
देखो-देखो, घेरो-घेरो, मारो-मारो, धाओ धाओ ॥"

पृथ्वी पर पटने लगे—कट कटकर बलवान ।
मुर्दों की बस्ती बना—लङ्का का मैदान ॥
रघुकुल नायक के बाणों ने रघुकुल की शक्ति दिखा ही दी ।
उस प्रलय काल के धन्वा ने खलदल में प्रलय मचा ही दी ॥
जो बाण धनुष से चलता था उसके लाखों बन जाते थे ।
इस तरह राम के काल-बाण, लाखों के लिए मिटाते थे ॥
आतिशबाज़ी वाला अनार जैसे—चिनगारियों का घर है—
त्योंही राघव का एक बाण अगणित किरणों का दिनकर है ॥
विज्ञान-कला है अति महान्—इसको विद्वान् जानते हैं ।
बहुतेरी अगम वस्तुओं को, वैज्ञानिक सुगम मानते हैं ॥
अब भी नित नए—नए देखो, करता है आविष्कार जगत् ।
पर उस त्रेता वाले युग में—था वैज्ञानिक भण्डार जगत् ॥
इतना ही नहीं कि एक तीर लाखों के प्राण मिटाता था ।
कहते तो यह हैं—वही तीर, तर्कश में फिर आ जाता था ॥
थी यह उन्नत विज्ञान-कला, अथवा मन्त्रोपचार था यह ।
जो भी हो प्रभु के बाणों में बल था यह, चमत्कार था यह ॥

इस प्रकार कोदण्ड से शर जब चले अखण्ड ।
समरस्थल में रक्त की—सरिता वही प्रचण्ड ॥
मानो दोनों मदमाते दल—सरिता के तट दिखलाते थे ।
कपि, भालु, निशाचर मरे हुए—जल-जन्तु समान सुहाते थे ॥
पड़ रहे भँवर थे पहियों के, तैरे थे कछुए ढालों के ।
पत्ते थे टुकड़े खालों के, छाए सिवार थे बालों के ॥
मेदस के झाग दीखते थे, लहरें थीं टूटे तीरों की ।
ढाए गिरती थीं आर-पार, कट-कटकर मृतक शरीरों की ॥

बढ़-बढ़ लड़ते थे प्रमुख सुभट, क्षणभर भी नहीं ठहरते थे ।
वे मानों रण की सरिता में-उत्तम तैराक तैरते थे ॥

असुरों का होने लगा जब भीषण संहार—
तब तो मानो मृत्यु का हुआ गर्म बाज़ार ॥
लाशों पर लाश पटीं, रण बन गया मसान ।
लंका का मैदान वह-था अब प्रेत-स्थान ॥

गीधों के झुण्ड 'गोट' करने मुण्डों के पास जुड़ रहे थे ।
काकों के वृन्द पेट भरने, मुर्दों के निकट उड़ रहे थे ॥
चीलों की टुकड़ी चीर फाड़ लाशों के टुकड़े करती थीं ।
बोटी-बोटी के टुकड़ों पर झगड़े पर झगड़े करती थीं ॥

रात हुई तो नाचने-लगे भूत बैताल ।
बोले कर्कश स्वरों में-श्वान उलूक शृंगाल ॥

बैतालिनियों का तीर्थ बना-संग्राम-भूमि की सरिता वह ।
प्रेतनियों का पकवान बना मृतकों का मेदा-मज्जा वह ॥
योगिनियाँ उस बिरियाँ आकर खप्पड़ियाँ खूब सजाती थीं ।
चामुण्डा लिए खुपड़ियों को उनकी खड़ताल बजाती थीं ॥

इस प्रकार दो दिन रहा-घना घोर संग्राम ।
राम-बाण से शत्रुदल आहत हुआ तमाम ॥
अगले दिन रणभूमि से चले निशाचर भाग ।
लङ्कापति अवलोक यह, हुआ क्रोध से आग ॥

वह बाण लपलपाते छोड़े-कपियों का साहस तोड़ दिया ।
श्री राघवेन्द्र के रथ को भी उत्तर की दिशि को मोड़ दिया ॥
सुग्रीव नील, नल, अङ्गदादि, सबको पीड़ित अत्यन्त किया ।
फिर शक्तिबाण द्वारा तुरन्त लक्ष्मण को मूर्च्छावन्त किया ॥

लक्ष्मण भैया के लगी ज्योंही शक्ति महान—
पिछली घटना याद कर-बोले कृपानिधान ॥
"भाई ! क्यों मूर्च्छावन्त हुए ? कुछ अपने बल को याद करो ।
वैरी सम्मुख है खड़ा हुआ उठकर उसको बर्बाद करो ॥
अब यहाँ सुषेण हकीम नहीं, जो औषध तुम्हें बतायेगा ।
हनुमत् पर इतना समय कहाँ ? जो जीवन-बूटी लायेगा ॥
मैं तेरे बल पर लड़ता हूँ, क्या तू मुझको हरवायेगा ?
ओ बाँके रघुकुल के क्षत्री, क्या कुल का नाम डुबायेगा ॥
फिर हुआ अचेत शक्ति से तू, कुछ लाज न तुझे आरही है ।
ज्यादा बातों का समय नहीं, मेरी भी जान जारही है ॥
मँझधारा के चक्कर में ला, क्यों डुबा रहे नैया लक्ष्मण ।
हो तुममें लोहू रघुकुल का, तो उठ बैठो भैया लक्ष्मण ॥
जीवन में अपने कुछ अनीति मैंने न एक क्षण भी की हो ।
तो शक्तिबाण तू निष्फल हो, सब पीड़ा दूर यती की हो ॥

प्रभु के पावन हृदय से, जब निकले यह बैन ।
'राम-राम' कह लषण ने-खोले अपने नैन ॥
जगते ही सौमित्रि ने, माँगा निज कोदण्ड ।
फिर निहार लंकेश को छोड़ा बाण प्रचण्ड ॥

शर था या बिजली का कौंधा रण में प्रकाश कर छूट गया ।
घोड़ों समेत रथवान मरा, रथ लंकेश्वर का टूट गया ॥
दशमुख दशशीश, दशानन वह पृथ्वी पर गिरा अचेतन हो ।
कपि वध को दौड़े प्रभु बोले-"इस भाँति नष्ट दशवदन न हो ॥
आगे बढ़ कहा उच्च स्वर में-शोभा देता यह कर्म नहीं ।
मूर्च्छित वैरी का वध करना-हे शूरवीर का धर्म नहीं" ॥

इतने में कुछ निशचर आए, ले गए उठाकर रावण को ।
लङ्कापुर के घायल-घर में पहुँचाया जाकर रावण को ॥
बीती आधी रात तब खोले उसने नैन ।
देखा चरणों के निकट मन्दोदरि बेचैन ॥
पति-चरणदबाती हुई नारि हिचकियाँ मारकर रोती थी ।
मानो आँसू की बूँदों से रोगी की मूर्च्छा खोती थी ॥
ज्योंही रावण की आँख खुली, दिन की बातें आईं सर में ।
"क्या है ? मैं कहाँ आगया हूँ ? यह पूँछा धीमे से स्वर में ॥
फूट-फूट रोने लगे-अब अबला के नैन ।
पति--चरणों में टेक सिर, बोली ऐसे बैन ॥
"प्राणेश ! इस समय घर में हैं, पट्टियाँ बँधी हैं घावों पर ।
रण से आहत मूर्च्छित आए-सेवक मण्डल के हाथों पर ॥
यह सुनकर वह प्राकृतिक वीर अति कड़े शब्द से कड़क उठा ।
सब तन आहत होने पर भी दशकण्ठ भुजस्थल फड़क उठा ॥
बोला-मूर्खों ने बुरा किया मूर्च्छित था तो जग जाता मैं ।
मरता तो उनसे ही मरता या उन्हें मारकर आता मैं ॥"
चुप रहा न गया भामिनी से बोली--"यह आन छोड़िए अब ।
प्राणों पर आई प्राणेश्वर अपना अभिमान छोड़िए अब ॥
बालक तुम कहते जिन्हें, वे हैं अति बलवान ।
सेवक हैं जिनके प्रबल--अङ्गदादि हनुमान ॥
उनसे लड़कर हे प्राणनाथ, जय कभी नहीं तुम पाओगे ।
कहता है मेरा दक्षिणाङ्ग-तुम विधवा मुझे बनाओगे ॥
जिस दिन से सीता आई है आगया शीत निशचरगण में ।
जानकी जान की लेवा है' यह नहीं सोचते तुम रण में ॥

लड़कर जो तुम्हें करे मूर्छित सामर्थ्य नहीं यह नर की है ।
उन तपस्वियों के चोलों में अवतीर्ण शक्ति ईश्वर की है ॥
अतएव माँगती हूँ हे पति, पत आज माँग की रक्खो तुम ।
उसको जिसके हो नाथ तुम्हीं मत अनाथिनी होने दो तुम ॥

### * गाना *

बढ़ाओ न-रार पिया तुम उनसे रन में ।
जगाओ न—सोते हुए सिंहो को वन में ॥
उनमें है वीरता—रण धर्म पै भिड़ जाने की ।
तुम पै है हीनता परनारि के चुराने की ॥
पल्ला हल्का है जिधर जय न उधर आने की ।
इसलिए, बात बनी रहने दो धराने की ॥
लगाओ न कटीली बाढ़ भवन में उगेंगे शूल चमन में ।
घुसेंगे गैर वतन में विचार लो मन में ॥"

—: o :—

नारी की यह बात सुन, तड़प उठा बीमार ।
चट चट चटके बन्द सब बही रुधिर की धार ॥

बोला–"चल हट कायर नारी, मैं नहीं युद्ध से डरता हूँ ।
फिर पीछे कभी नहीं हटता–जब आगे को पग धरता हूँ ॥
क्यों उनके गुण तू गाती है, क्या मैं इससे डर जाऊँगा ।
बस, प्रातकाल ही निर्णय है, मारूँगा या मर जाऊँगा ॥
यदि वे ईश्वर अवतारी हैं तो सफल अभी अनबन होगी ।
रणभूमि सेज होगी मेरी और मौत महा दुल्हन होगी ॥
परमात्मा उन्हें मानकर भी क्यों बातें करती है हल्की ?
मेरी खातिर वह खुद आए यह महिमा है मेरे बल की ॥"

अन्धकार में दीप सा—कुछ जल उठा तुरन्त ।
अहंकार की वायु से फिर बुझ गया तुरन्त ॥
बोला-"मेरे इन चरणों पर सारा सुरमण्डल झुकता है ।
बन्दी होकर---मेरे घर में, यम और काल तक सड़ता है ॥
तू मुझे जानती है इतना—केवल मैं लङ्काधीश्वर हूँ ।
बाउली तुझे यह खबर नहीं मैं ही दुनिया का ईश्वर हूँ ॥

## * गाना *

—०—

जिधर भी देखता हूँ, मैं ही मैं हूँ ।
जरा जब सोचता हूँ, मैं ही मैं हूँ ॥
नहीं मेरे सिवा है और कोई ।
कि मैं यह बोलता हूँ, मैं ही मैं हूँ ॥
पराजय में, विजय में, घर में रण में ।
जहाँ भी भासता हूँ, मैं ही मैं हूँ ॥
कहे तू चाहे इसको खुदपरस्ती ।
मगर मैं जानता हूँ, मैं ही मैं हूँ ॥
सुना है ईश्वर है वस्तु कोई ।
जब उसको खोजता हूँ, मैं ही मैं हूँ ॥"

—:०:—

मूर्ख और विद्वान की कब पटती है बात ?
इसी भाँति मेरी यहाँ नहीं कटेगी रात ॥"
यह कहकर रावण उठा--छोड़ नारि का ध्यान ।
अगले दिन के युद्ध का किया समस्त विधान ॥
था जैसा दृश्य युद्ध का कल, फिर आज वही दरसाया है ।
श्रीराम और रावण का रण, पूरा किसने कह पाया है ?
वह ही दलबल वह ही हलचल, वह ही गुठभेड़ भटों की थीं ।
निशि-दिन की नाईं श्याम-श्वेत वह ही रंगत वीरों की थी ॥

वह रणमण्डल नभमण्डल था, नक्षत्रों-सा निशचरदल था ।
जिस रथ पर राम-भानु प्रकटे, वह रथ मानो उदयाचल था ॥
रवि के प्रकाश से अन्धकार क्रमशः ज्यों हटता जाता था—
त्यों रामबाण से दिन-प्रति दिन राक्षसदल कटता जाता था ॥
विधवाओं के स्वर लङ्का में-आकाश हिलाए देते थे ।
पितृने निपूती माँओं के—पत्थर पिघलाए देते थे ॥
सारांश—लड़ाई कई दिनों घमसान घोर अत्यन्त हुई ।
कितने माई के लाल मरे—गिनती न अन्त-पर्यन्त हुई ॥

एक दिवस अति कुपित हो, उठे कोशलाधीश ।
काट दिए दसशीश के क्षणभर में दश शीश ॥

पर उसी समय सबने देखा-नूतन सिर प्रकट हुए उसके ।
सिर थे या जादू के पुतले, कटकर फिर प्रकट हुए उसके ॥
घण्टों तक होता रहा यही, सुर-वानर सब घबराते हैं ।
रघुनाथ काटते जाते हैं—सिर नए निकलते आते हैं ॥

थके काटते-काटते, कटा न कोई शीश ।
देख विभीषण को हँसे, तभी कोशलाधीश ॥
भाव राम के हृदय का, गया भक्त पहचान ।
झिझका बतलाते हुए, कर भाई का ध्यान ॥

सचमुच उस क्षण-उस भाई में, भाई का प्रेम उभर आया ।
मानो सूखे सर के भीतर आप ही आप जल भर आया ॥
सोचा-"खोलूँगा भेद नहीं, इसमें ही आज भलाई है ।
कैसा ही भला बुरा है-पर, आखिर तो मेरा भाई है ॥"

इधर विभीषण में जगा, जब भाई का प्यार ।
उधर-दशानन के उठा, मन में एक विचार ॥

"मेरे भेदों का जानकार-केवल इस जगह विभीषण है।
इसलिए मृत्यु का भी मेरी हो सकता यह ही कारण है॥
पहले इसको ही मारूँ तो जीवन निर्भय हो जाएगा!
फिर तपसी तो किस गिनती में है, ब्रह्मा तक मार न पाएगा॥"

छोड़ा भाई की तरफ़-शक्तिबाण तत्काल।
तभी बीच में आगए-कौशल्या के लाल॥
ठिठक गया वह बाण जब देखे कृपानिधान।
छूकर चरणों को गया-सीधा ब्रह्मस्थान॥

इस दुर्घटना के घटते ही, परिवर्तन हुआ विभीषण में।
सोचा-"यह भाई वैरी है, इसको मरवा दूँगा रण में॥"
बदले की आग भड़कते ही, दौड़ा वह भेद बताने को।
तैयार हुआ घर का भेदी सोने की लङ्का ढाने को॥

किया निवेदन राम से-"सुनिए कोशलनाथ।
बतलाता हूँ, मरेगा किस प्रकार दशमाथ॥

सिर बढ़ने की चिन्ता न करें-यह छाया मृत्युञ्जय की है।
इसको जो जीता रखती है, वह माया मृत्युञ्जय की है॥
पुष्पों की जगह शिवार्चन में, सिर अपने काट चढ़ाए हैं।
शायद वे ही सिर अब इसने—शङ्कर से वापिस पाए हैं॥
यदि किसी यत्न से-महादेव-इसके ख़याल से हट जाएँ।
तो शिर की बाढ़ नष्ट होकर असली मस्तक सब कट जाएँ॥
फिर अमृत नाभि में है इसके वह ही जीवित रखता खल को।
इसलिए छोड़िये शर ऐसे सोख जो इसके-उस बल को॥"

भेद विभीषण भक्त से सुनकर भले प्रकार।
प्रभु ने कर शिव-वन्दना फिर से किया प्रहार॥

चले मन्त्र-प्रेरित जभी, प्रभु के बाण महान ।
अमृत सुखाया नाभि का, छुड़ा दिया शिव ध्यान ॥
एक एक कर जब लगे कटने गिरने शीश ।
तब विचार करने लगा मन में लङ्काधीश ॥
भाई से बैर बढ़ाने का क्या फल है-देख लिया मैंने ।
बदला मिल गया मुझे उसका, जो उसके साथ किया मैंने ॥
मैं भी कैसा मतवाला था, यों भाई को त्यागा मैंने ।
भाई भाई ही था आखिर, क्यों भाई को त्यागा मैंने !
उसके मत पर मैं चलता तो यश मिलता आप भलाई थी ।
हाँ ! मैंने उल्टी-सभा-बीच उसके ही लात लगाई थी ॥
हे राम ! मारने में मुझको कुछ तुम्हें न गौरव प्राप्त हुआ ।
यह रण था भाई भाई का, जो ऐसे आज समाप्त हुआ ॥
भुजा अठारह शीश नौ काट चुके अवधेश ।
गिरा तभी रण भूमि में हो अशक्त लंकेश ॥
मरते-मरते भी हुआ उसे तनिक सा चेत ।
आँखें खोली सामने देखे कृपानिकेत ॥
मानो जीवन-मरण वह करने लगा पवित्र—
तब प्रभु आज्ञा से उधर, बोल उठे सौमित्र ।
"रावण, जग में तुमसा योद्धा, तुमसा न आन वाला कोई !
तुम नीति-विशारद पण्डित हो, तुमसा न ज्ञान वाला कोई ॥
इसलिए मृत्यु से पहिले तुम-कुछ नीति सिखाते जाउ हमें ।
हे विज्ञानी, अपना अनुभव, कुछ तो बतलाते जाउ हमें ॥"
मान बढ़ाते भक्त का किस प्रकार भगवान्—
यही सोच उस होंठ पर-आई कुछ मुस्कान ॥

बोला-"अब इतनी शक्ति नहीं जो नीतिशास्त्र का वर्णन हो ।
हाँ इतनी माँमें बाकी है-जिनमे कुछ आज्ञा-पालन हो ॥
दो बातें केवल कहनी हैं, शुभ कार्य शीघ्र करना अच्छा ।
दुष्कर्म टले जितना टालो, उसका सदैव टलना अच्छा ॥
मैंने सोचा था-लंका में, मैं क्षीरसागर ले आऊँगा ।
यह भी सोचा था-स्वर्ग तलक, जाने का मार्ग बनाऊँगा ॥
पर, आज-आज करते-करते, मुझसे कर्तव्य रह गया वह ।
मन ही में रही कामना वह, रह गईं अपूर्ण योजना वह ॥
पर-नारी चोरी करने का-कर डाला कार्य शीघ्रता से ।
परिणाम उसी का यह पाया, चल दिया आज मैं दुनिया से ॥
अच्छा यह नीति समाप्त हुई, कहनी अब एक हृदय की है ।
तुम समझे हो-हम जीते हैं, पर नहीं, जीत मेरी ही है ॥
अपने जीते जाने न दिया, लंका में राम, तुम्हारे को ।
जारहा तुम्हारे आगे ही-देखा मैं धाम, तुम्हारे को ॥
मुझसे पापी दुष्ट का, मरना ही है ठीक ।"
खोली थी मुख नीच ने, बन्धु-वैर की लीक ॥
इस प्रकार कहकर, बढ़ा, आगे लंकानाथ ।
भक्त विभीषण से मिला आतुरता के साथ ॥
प्रेम-सिन्धु में लय हुए अच्छे बुरे विचार ।
खोये दो बन्धुओं ने अपनी सभी विकार ॥
तभी अचानक राम के कर से निकला बाण !
अन्तिम सिर भी काटकर खींचे उसके प्राण ॥
सिर दसवाँ दसशीश का प्रभु-पद गिरा तुरन्त ।
धड़ भाई पर ही रहा, हुआ इस तरह अन्त ॥

सुना विभीषण का तभी सबने हाहाकार ।
वह भी धड़ के सँग गिरा, सुधबुध सभी विसार ॥
जब चेत हुआ तो चिल्लाया—"मैंने ही घर को ढाया है ।
हा ! भाई होकर भाई का, रण में संहार कराया है ॥
वह बड़ा भ्रात था, अनुचित क्या ? जो उसने लात लगाई थी ।
पर मैंने—इतने पर ही क्यों, उससे शत्रुता बढ़ाई थी ?
अपमान लात से समझा तो, मुझमें सहिष्णुता रही कहाँ ?
शिष्टता गयी नम्रता गई, फिर भला साधुता रही कहाँ ?
संकुचित चित्त का होने से—अनुचित यह हुआ मुझी से था ?
भाई था बड़ा गुणों में भी, लंका का मान उसी से था ॥
इतने में मन्दोदरी—आई करती हाय ।
गिरी लाश पर चीखकर—हा ! लंका के राय ॥"
आँखें पसारकर दुखिया ने प्राणेश्वर के तन को देखा ।
लोहू से लथपथ छिन्न-भिन्न, अपने जीवनधन को देखा ॥
चिल्लायी—"हाय ! सुहाग गया, शृङ्गार गया, साम्राज्य गया ।
घर के राजा के साथ-साथ घर की रानी का राज्य गया ॥
ईश्वर ! यह न्याय बदल दो तुम जो जग में बहुधा करते हो ।
पति को पत्नी से प्रथम मार—पत्नी को विधवा करते हो ॥
यम को अब ऐसी आज्ञा दो, यह उल्टा नियम सुधर जाए ।
पीछे से पति के प्राण जाँय पहले अर्द्धाङ्गिनि मर जाए ॥
विधवाओं की चीखें-आहें, क्या तुम तक जाती नहीं प्रभो !
यह प्रलयकाल की आवाजें, क्या तुम्हें रुलाती नहीं प्रभो ?
यदि न्यायनिधान कहाते हो तो करो न नारी को विधवा ।
अन्यथा कहेगी अन्यायी, तुमसे सुखकारों को विधवा ॥"

घण्टों तक रोती रही दुखिया इसी प्रकार ।
चूड़ियाँ तोड़ीं हाथ की, बिछुए दिए उतार ॥

उस टूटे दिल के करुण शब्द कब कहने में आ सकते हैं ?
उस विकल हृदय के पछतावे किस भाँति लिखे जा सकते हैं ॥
वह धारा वही आँसुओं की--रामादल भी आँसूमय था ।
बन जाय न सागर एक और लंका के निकट--यही भय था ॥

प्रभु ने मन्दोदरी की दशा निहारी दीन ।
उधर विभीषण भक्त को-देखा दुखी, मलीन ॥
रह न सके आगे बढ़े दिया बहुत उपदेश ।
दबा वियोगी जनों में-कुछ वियोग का क्लेश ॥

पाकर आदेश विभीषण ने, साधन सब भले प्रकार किया ।
श्रीराम नाम उच्चारण कर, सागर--तट शव सँस्कार किया ॥
ऐ दुनिया के जीवों देखो सब ही इस घाट उतरते हैं ।
दुख है तो यह, कुछ रोज़ो को, क्या-क्या न पाप हम करते हैं ॥

जाता है संसार में और न कोई संग !
आँखें हों तो देख लो-दुनिया का यह रंग ॥

## * गाना *

—: o :—

फ़ानी जहाँ में रोज बना करती हैं शक्लें ।
बनती हैं खुद ही मिटा करती हैं शक्लें ॥
बच्ची, कभी जवान, कभी बूढ़ी बन गई ।
कितने ही रँग में खुद को रँगा करती हैं शक्लें ॥
होता है गदा कोई, कोई होता शाहंशाह ।
धोखा यही दिन रात दिया करती हैं शक्लें ॥

## ❀ गाना ❀

—०—

सोने को पलँग चाहिए रहने को महल हो ।
कुछ दिन के लिए क्या न किया करती हैं शक्लें ॥
अपने मकाँ को देख के फूली न समाती ।
औरों के घर को देख हँसा करती हैं शक्लें ॥
अपना ही अपना करके चली जाती हैं आखिर ।
क्या थीं, कहाँ गईं, न कहा करती हैं शक्लें ॥
पर्दे में इसके कोई खिलाड़ी है "राधेश्याम" ।
बस डोर पै उसी की फिरा करती हैं शक्लें ॥

—:०:—

जब यह लीला हो चुकी तब बोले रघुराज—
"लषण, विभीषणराज को राजतिलक दो आज ॥"
"जो आज्ञा" कहकर चले, अनुज भक्त के साथ ।
बना दिया शुभ समय में, उसको लंकानाथ ॥
भक्त विभीषण के जभी सजा शीश पर ताज ।
आपस में कहने लगा, सारा असुर समाज ॥
"रावण राजा तो कहते थे—यदि राम जयी हो जायेंगे ।
तो इस लङ्का की ईंट ईंट, कोशलपुर को ले जायेंगे ॥
पर वे तो आए भी न यहाँ, भेजा है केवल लक्ष्मण को ।
वह भी इस कारण से भेजा, दे जाएँ राज्य विभीषण को ॥
मानो लंकावालों ही को रघुनन्दन ने जीती लंका ।
लंकावालों ही को दे दी उनकी यह सोने की लंका ॥
वह देश जाति है धन्य जहाँ प्रकटे राजा दानी ऐसे ।
वह कोख धन्य, जिससे पैदा होते हैं सद्ज्ञानी ऐसे ॥
हम तो इस समय देखते हैं परिणाम हुआ है यह रण का ।
हर मन पर राज्य राम का है, हर तन पर राज्य विभीषण का ॥

भक्त विभीषण होगए विधिपूर्वक लंकेश ।
हनुमत् ने आकर दिया तब प्रभु को संदेश ॥
बोले-"राजन् कीजिए ऐसा अभी प्रयास ।
पहुँचे जिससे जानकी शीघ्र नाथ के पास ॥
यह सुन लगे प्रबन्ध में लंका के महिपाल ।
भेजा सीता के निकट दासी-दल तत्काल ॥
त्रिजटा ने कहा-"बधाई लो, विध्वंस निशा उत्पात हुआ ।
होगए प्रकाशित रविकुलपति, पत्नी के लिए प्रभात हुआ ॥
जाओ तुम उनपर-जिनकी हो, क्या ज़ोर पराए पर अपना ?
हम दीपक हैं आदर ही क्या दिन के उग आए पर अपना ?
उस दिन तुम चिता रच चुकी थीं पर आग न सुलगाई मैंने ।
दे देना मुझे क्षमा उसकी जो पीड़ा पहुँचाई मैंने ॥
तुम बड़ी आदमिन हो इससे कहती हूँ जो आई मुख में—
सुख में मत उन्हें भूल जाना जो साथ रहीं निशिदिन दुख में ॥"
कुछ कृतज्ञता, लाज, कुछ, कुछ था मन में चाव ।
आँखों ने ही सिया की, कहा हृदय का भाव ॥
तब सबने मज्जन करा, धोए उनके केश ।
लगीं बनाने बनी-सा बनवासिनि का बेश ॥
सिर गूँथी करके माँग भरी-सेंदूर से और मोतियों से ।
केशावलि, तारावलि, निशि सी, सजगई कुसुम की कलियों से ॥
सोलह शृङ्गारों से सजकर जब जगदम्बा तैयार हुईं—
चोदह भुवनों की शोभाएँ उस शोभा पर बलिहार हुईं ॥
इसी समय आए वहाँ प्रमुदित पवनकुमार ।
"जय जननी" कह चरण में लोटे बारम्बार ॥

तत्काल बहादुर बेटे को हाथों पर उठा लिया माँ ने ।
आनन्द भरे गद्‌गद् स्वर से फिर आशीर्वाद किया माँ ने ॥
बोली—"मिल गई आज मुझको, सम्पदा विश्व भर की बेटा ।
इतना है मुझ पर ऋण तेरा, मैं उऋण न हो सकती बेटा ॥"

तभी सजाकर पालकी लाए लङ्काधीश ।
बैठीं उस पर मैथिली, सुमिर कोशलाधीश ॥
लंकेश्वर आगे चले, इस शिविका के संग ।
मध्य—झुण्ड दासियों का, पीछे श्रीबजरंग ॥

वानर उस ओर पुकार उठे—"श्री सीतारामचन्द्र की जय ।"
हनुमान् उधर से बोल उठे—"श्री राजा रामचन्द्र की जय ॥"
अब तो जय का वह तार बँधा मानो जय जगत् कर रहा है ।
पृथ्वी, नभमण्डल, जल-जंगल—सबमें जयकार भर रहा है ॥
वृक्षों से ऐसी वायु चली जो फूली अङ्ग न समाती थी ।
इस समाचार को बार-बार कौशलपुर तक पहुँचाती थी ॥
फिर लौट वहीं पर आती थी, शिविका वस्त्र हटाती थी ।
जग-जननी का प्रिय दर्शन कर सौरभ से भर भर जाती थी ॥

रोक सका कपिदल नहीं मन की तरल तरंग ।
दौड़ा दर्शन के लिए—पिछली जय के संग ॥

प्रभु बोले—"शिविका ठहराओ, पैदल सीता को आने दो ।
उत्साही वानर-मण्डल को दर्शन का लाभ उठाने दो ॥
जी जान लड़ाकर जयी बने—उन भक्तों से लज्जा कैसी ?
बनवासी जीवन है जिसका, उसको राजसी छटा कैसी ?"

इस आज्ञा ने पालकी रुकवा दी अविलम्ब ।
बाहर आईं मुदित मन जगज्जया जगदम्ब ॥

ज्यों उदयाचल फाड़ के, हो रवि-प्रभा-प्रकाश ।
त्यों जननी की ज्योति से चमके महि-आकाश ॥
चतुरा चञ्चल चक्षुएँ चकित चितय चहुँ ओर ।
रामचन्द्र मुखचन्द्र की-सचमुच बनी चकोर ॥
सोचा हनुमत् ने तभी-"आज दैव अनुकूल ।
स्वामी स्वामिनि के लिए ले आऊँ कुछ फूल ॥
उस ओर भक्ति से भरे हुए बजरङ्ग चल दिए उपवन को ।
इस ओर वियोगिनि ने आकर देखा अपने जीवन धन को ॥
पर जीवन-धन ने अपना मुख दूसरी ओर कर लिया वहीं ।
मानो निज मन के भावों को भामा पर प्रकटित किया वहीं ॥
पति-मन की सब भावना गईं जानकी जान ।
सोचा-"प्रभु जो सोचते, वह ही करूँ विधान ॥
अपने चरित्र का चमत्कार दुनिया को दिखलाना होगा ।
प्रतिविम्ब अग्नि को अर्पण कर वैदेही बन जाना होगा ॥
पावक यदि मेरी साक्षी दे तो सब कलङ्क मिट सकता है ।
ज्वाला ही में जाकर सोना पहिले अधिक दमकता है ॥"
यह सोच लषण को आज्ञा दी-"देवर ! तुम आज्ञाकारी हो ।
अब भी आज्ञा का पालन कर-मेरे सच्चे हितकारी हो ॥
तुम मुझको माता कहते हो-तो आज्ञा अङ्गीकार करो ।
अतिशीघ्र जलाओ ज्वाल यहाँ कुछ सोचो मत स्वीकार करो ॥"
आज्ञाकारी कब भला-आज्ञा सकता टाल ।
"जो-आज्ञा" कह लषण ने, वहीं जलादी-ज्वाल ॥
ज्योंही लपटों का बढ़ा-वेग और विस्तार ।
जग जननी जगदम्बिका कहने लगीं पुकार—

"दुनिया के अविश्वासियों को हे ज्वाले, उत्तर देना तुम ।
मन से भी पापिनि होऊँ मैं तो भस्म मुझे कर देना तुम ॥"
यह कहकर लिपटी लपटों से-कपिदल पर छाया खेद वहाँ ।
घटना यह घटी प्रकट में थी, पर गुप्त और भेद वहाँ ॥
यह दण्डकवन का है प्रसङ्ग-पावक में सिया समाई थी ।
प्रभु आज्ञा से लीला करने, छाया की मूर्ति बनाई थी ॥
इस कारण असली बनने को, नक़ली प्रतिविम्ब जलाने को ।
ज्वाला में कूदीं जगजननी, जग का सन्देह मिटाने को ॥

इसी समय पुष्पों सहित आए श्रीवजरङ्ग ।
दंग रह गए देखकर ऐसा रङ्ग कुरङ्ग ॥
सुना जभी सुग्रीव से-माँ का अग्नि प्रवेश ।
सहा न आत्मा से गया-मन का दारुण क्लेश ॥
लाल लोचनों से हुई प्रकट क्रोध की ज्वाल ।
भृकुटी कुटिल कराल कर बोल उठे तत्काल—

"रघुराज, ? आप स्वामी मेरे, कहना कुछ नहीं आप से है ।
मुझको तो आज युद्ध करना इस भीषण अग्नितप से है ॥
यह ध्यान रहे, हे अग्निदेव ? है आज तुम्हारा भला नहीं ?
यदि माता को दे दो तुम तो फिर तुमसे शत्रुता नहीं ॥
सुग्रीव शपथ मारुत की है, विधि की, हरि की, शंकर की है ।
भक्षण कर लूँगा तुमको भी, सौगन्द राम रघुवर की है ॥
भूमण्डल होगा खण्ड-खण्ड, आकाश रसातल जायेगा ।
जय पाकर अग्निलोक तक पर-माता को बेटा लायेगा ॥
पृथ्वी की पञ्चतत्व वाली सब सृष्टि मिटाई जायेगी ।
चार ही तत्व से सब जग की रचना रचवाई जायेगी ॥"

इतना कह झपटे उधर, जभी वीर बजरङ्ग ।
तभी बदलता अग्नि का देखा सबने ढङ्ग ॥
फिर देख विचित्र मूर्ति लपटों में बनती जाती है ।
वह मूर्ति जगत् की जननी को जगपति के सम्मुख लाती है ॥
सीता को प्रभु के अर्पण कर क्षण में वह मूर्ति विलीन हुई ।
मिट गया अँधेरा अपयश का प्रकटित यश प्रभा नवीन हुई ॥
मानो विमुक्त हो माया से फिर रूप रमा का दमका है ।
या अग्निदेव की साक्षी मे सतवन्त का सत् चमका है ॥
थीं बाएँ दिशि अब वैदेही, दाएँ रघुवीर सुहाते थे ।
बड़भागी थे श्रीपवनतनय-चरणों पर पुष्प चढ़ाते थे ॥
शोभा युगल-स्वरूप की, थी इस समय अपार ।
गुप्त प्रकट सब शक्तियाँ, होती थीं बलिहार ॥
उसी समय परलोक मे विजय-बधाई-हेतु ।
आए सूक्ष्म शरीर से दशरथ रघुकुल-केतु ॥
कितने ही अनुभवशील पुरुष यह गुप्त रहस्य जानते हैं ।
जग में दो रूप-स्थूल, सूक्ष्म-कहते हैं और मानते हैं ॥
निश्चय ही जीव स्थूल छोड़-कुछ काल सूक्ष्म में रहता है ।
जब अवधि सूक्ष्म की हो समाप्त तब दशा दूसरी गहता है ॥
दशरथ जब गए सूक्ष्म जग में, वासना राम-दर्शन की थी ।
अतएव अवस्था रही वही, जो काया के बन्धन की थी ॥
आए अब उसी भावना से अभिलाषा पूरी करने को ।
नयनामृत छवि की धारा से व्याकुल मन का घट भरने को ॥
योगदृष्टि से भेद यह-जान गए सब राम ।
पिता-पुत्र में होगया-आशिष और प्रणाम ॥

मुस्काते हुए पिता बोले–"अब रही न शेष कामना है ।
इस रूप–माधुरी को पाकर पूरी होगई वासना है ॥
जीना मरना सब सफल हुआ तजकर पाकर फिर आज तुम्हें ।
अब मैं तुममें लय होता हूँ–देकर आत्मा का राज तुम्हें ॥"

यह सच्ची सान्त्वना थी प्रकृति-प्रपञ्च–विहीन ।
पूर्ण सिन्धु में बिन्दु वह, हुआ इस तरह लीन ॥
तदुपरान्त सुरपति-सहित शिव-अज आए पास ।
प्रभु-गुण-गण गाने लगा सब सुरदल सोल्लास—

## ❋ गाना ❋

— ० —

"जय तुमन दशानन पै पाई है, तुम्हें रघुकुल के राई बधाई है ।
वीरता की पताका उड़ाई है, तुम्हें रघुकुल के राई ! बधाई है ॥
दुष्टों ने ऐसा दबाया जा हमको, जीवित मृतक-सा बनाया था हमको ।
फिर हममें नई शक्ति आई है तुम्हें रघुकुल के राई ! बधाई है ॥
आज सँवारे हैं, ताप निवारे हैं, दास उबारे हैं तुमने राम ।
लोलधाम, शोभाधाम, सत्यकाम, पूर्णकाम—
पीड़ा मिटाई है, बाधा हटाई है, शुभ घड़ी आई है ।
भेंट यह लाई है, जग में कमाई है—'जय-जयकार' ।
ध्वनि चौदह भुवन में वह छाई है–तुम्हें रघुकुल के राई ! बधाई है ॥"

—: ० :—

कपिदल को सुर-सुधा से जीवन मिला नवीन ।
राक्षस जिए न इसलिए हरि से हुए विलीन ॥
भेंट विभीषण ने किए रत्न अनेक प्रकार ।
बाँट दिए साथियों को प्रभु ने कर सत्कार ॥
रक्खा अपने कार्य को केवल पुष्पक-यान ।
राजे सीता-लषणयुत उस पर कृपानिधान ॥

थे असंख्य कपि भालु जो आज्ञाकारी दास ।
विदा उन्हें करने लगे—सादर रमानिवास ॥
बोले-"इस रण के नाते ने मन का वह नाता जोड़ा है ।
जिस नाते के आगे जग में जग का नाता सब थोड़ा है ॥
जीवन अर्पण कर देने को-जो नाता तत्पर रहता है ।
दुनिया के सारे नातों में वह नाता बढ़कर रहता है ॥
हम दो भाई व्याकुल विह्वल बन बन में मारे फिरते थे ।
सीता-सी रत्न-मञ्जरी खो-निर्धम दुखियारे फिरते थे ॥
ऐसे दुर्दिन में साथी बन तुमने जो जान लड़ाई है ।
उस सहायता की रामचन्द्र कर सकता नहीं बड़ाई है ॥
सच तो यह है तुमने जग को स्वर्गीय धर्म सिखलाया है ।
उपकार किस तरह करते हैं यह नरदल को दिखलाया है ॥
तुमने ही रावण मारा है, सीता का कष्ट निवारा है ।
मैं नाममात्र का विजयी हूँ, वास्तव में काम तुम्हारा है ॥
जाओ पर इतना ध्यान रहे-मन मेरा धाम तुम्हारा है ।
अबतक तुम रहे राम के थे, पर अब से राम तुम्हारा है ॥"
प्रेम भरे यह शब्द सुन—हुए सभी सानन्द ।
चले भक्ति का दान ले कह--जय रघुकुलचन्द ॥

हनुमत सुग्रीव विभीषणादि प्रभु के अनुरागी अतिशय थे ।
वह साथ न तजा चाहते थे इतने बेखबर प्रेममय थे ॥
तब उन्हें अवध ले चलने को लाचार अवध के नाथ हुए ।
श्री जाम्बुवान् अङ्गद आदिक रह सके न यह भी साथ हुए ॥
इस प्रकार निज जनों को लेकर अपने साथ ।
सुमिर गजानन गौरि-शिव चले अवध रघुनाथ ॥

चित्रकूट के निकट जब पहुँचा पुष्पक यान ।
तब बोले हनुमान से–कृपासिन्धु भगवान् ॥
"रहा एक दिन अवधि में, पहुँचो अवध प्रदेश ।
शीघ्र परम प्रिय भरत को–पहुँचाओ सन्देश ॥"
"जो आज्ञा" कहकर चले, पवनतनय सानन्द ।
वाल्मीकि मुनि से इधर भेंटे रघुकुलचन्द ॥
मुनि बोले–"जग को अभी मिला नहीं विश्राम ।
अभी हुआ ही है कहाँ रावण का वध राम ?
माया का सागर चहुँदिश है–उसमें शरीर यह लंका है ।
बैठा है अहंकार रावण, जो बजा रहा निज डंका–है ॥
घननाद स्वार्थ का है इसमें, आलस है कुम्भकरण भगवन् ।
वध करो कृपा-शर से इनका, तब हो भू-भार-हरण भगवन् ॥
जन का जब इस भाँति हो पूर्ण सफल सब काज ।
तब मेरे मन-अवध में, करो बैठकर राज ॥

## ❀ गाना ❀

सिया—लषण के साथ सदा आँखों में रहना ।
इसी रूप से नाथ ! हृदय के बीच विचरना ॥
सिर पै जटा का मुकुट विराजे तन पै वल्कल चीर ।
हाथ धनुष काँधे निषंग हो चुटकी में हो तीर ॥
प्रेम-अश्रु सरयू स्वरूप ही है, अब चरण पखार ।
तभी प्रसादी चरणोदक ले जन का हो निस्तार ॥
"राधेश्याम" न छूटे जैसे लोभी के धन धाम ।
त्योंही मेरे रोम रोम में, रमो रमापति राम ॥"

—:०:—

—ॐ इति ॐ—

# • श्रीराम-कथा •

संख्या—२१

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है।

( उत्तर-काण्ड )

लेखक—

नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—

कीर्तनकलानिधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न

पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—

उन्हत्तरवाँ संस्करण ] सन् १९८२ [ मूल्य १)

# प्रार्थना

जगपति है यह निवेदन—जब जन्म हो जगत् में ।
चरणों में तेरे हो मन—जब जन्म हो जगत् में ॥
हो ध्यान जहाँ तेरा—जप, तप जहाँ घनेरा ।
उस घर में हो बसेरा—जब जन्म हो जगत् में ॥
पृथ्वी पै जब मैं आऊँ, तुझको न भूल जाऊँ ।
तेरा ही गीत गाऊँ—जब जन्म हो जगत् में ॥
माया नहीं सताए, सद्ज्ञान मुझको भाए ।
तू ही नजर में आए—जब जन्म हो जगत् में ॥
जब काल की हो फेरी—छवि सामने हो तेरी ।
"मोहन" यह चाह मेरी—जब जन्म हो जगत् में ॥

दिन गिनते थे–अवधि के-अवधपुरी के लोग ।
इधर भ्रात को भ्रात का दुस्सह हुआ वियोग ॥
बिखर रहे हैं केश सब–है शरीर बेहाल ।
सोच रहा है हृदय में–कैकेयी का लाल ॥
हे मन संयोग-समय आया अब नहीं वियोग सहोगे तुम ।
मस्तिष्क, खुशी का दिन आया अब भी विक्षिप्त रहोगे तुम ॥
रघुराई का आना सुनकर–पाँओं, कब दौड़े जाओगे ?
हे हाथों, कब उन चरणों की सेवा का लाभ उठाओगे ?"
इतने में गिरने लगी–नयनों से जलधार ।
मन ही मन देने लगे–अपने को धिक्कार ॥
सोचा–"जिसकी माँ हठपूर्वक छोटे को राज्य दिलाती है ।
दासी की बातों में आकर अग्रज को वन भिजवाती है ॥
विष-सम विरोध की बूटी को–जो सुधा समझकर पीती है ।
दुनिया देखे उसकी सन्तति ऐसे रो रोकर जीती है ॥
जिस घर में राज्य फूट का हो–ऊजड़ ही वह घर होता है ।
रत्नों का भी भण्डार वहाँ–कङ्कड़ या पत्थर होता है ॥"
इसी समय आया इन्हें एक चित्र का ध्यान ।
"मात-सुमित्रा, अवध है–तुमसे स्वर्ग-समान ॥

माता ? हाँ हाँ, तुम माता हो, सच्ची माता कहलाती हो ।
इस सूने सघन विपिन में तुम-सिंहनी-समान सुहाती हो ॥
रघुकुल की महिलाओं में तुम-आदर्श बखानी जाती हो ।
जो सौतेले की सेवा में -निज सुत को साथ पठाती हो ॥

जिस घर ऐसी मात हो वह है देवस्थान ।
हो सकती है उसी के लक्ष्मण सी सन्तान ॥

लक्ष्मण, तू सच्चा भाई है, भाईपन हो तो ऐसा हो ।
चौदह वर्षों के तपवाला नर-जीवन हो तो ऐसा हो ॥
तू वह है बन के काँटों को-फूँको से जो कि उड़ाता है ।
भाई की सेवा के पथ में-आँखों को हर रोज़ बिछाता है ॥
सुन चुका भरत निज कानों से रण में तुझपर बीती थी जो ।
मेरे विचार से जीवन था तेरे वह शक्ति लगी थी जो ॥
इसलिए अनुज है धन्य तुझे तूने वीरोचित कर्म किया ।
संसार सदा शिक्षा लेगा-पालन ऐसा सद्धर्म किया ॥
पर मैंने हाय ! जन्म लेकर-इस जग में कौन भलाई की ।
एकान्त तपस्या की लेकिन-सेवा क्या की रघुराई की ॥
अब भी मनुजो होजा सचेत, किस दिन को कर्म क्षेत्र है यह ?
इस बार चूकना मत भाई जब तुम पर दिव्य नेत्र हैं यह ?
योगी की भाँति-देह तजकर-आत्मा के तार मिलाने हैं ।
आराध्यदेव के चरणों में प्राणों के फूल चढ़ाने हैं ॥
पर नहीं, भूल है यह पूजा होगी उनको स्वीकार नहीं ।
तू तो रक्षक है अवधि तलक तन पर तेरा अधिकार नहीं ॥
अतएव पवन' जल सूर्य चन्द्र इन सबको साक्षी करता हूँ ।
प्रभु के चरणों की शपथ-सहित अन्तिम प्रण यह ही करता हूँ ॥

चौदह वर्षों की अवधि बिता—यदि नाथ अवध में आयेंगे—
तो इस शरीर को छोड़ प्राण, उनके चरणों में जायेंगे ॥
ऐसी ही हठ अब ठानी है यह ही अभिलाष जग रही है ।
हे हृदय, बलिष्ठ बने रहना, प्राणों की होड़ लग रही है ॥

## ❀ गाना ❀

जैसे चातक के लिए स्वाति—बिन्दु ही सार ।
त्यों ही अब इस प्राण का एक राम आधार ॥
पधारो न ? जीवनप्राण !
हे अनाथपुर के नाथ, करो सनाथ सीतानाथ ।
जिएगी किस तरह यदि जल से पृथक मीन हुई ?
बजेगी किस तरह यदि तारहीन बीन हुई ॥
अवधि के रहते न आओगे अवध के राजा—
तो समझलो कि यह आत्मा तुम्हीं में लीन हुई ॥
हठीले दास की हठ पै ध्यान—
लाओ न ? आओ न ॥

—( ० )—

प्राणों को रख रही थी, जब यह अन्तिम टेक ।
तभी वहाँ पर आगया, बूढ़ा ब्राह्मण एक ॥
रघुकुल के छोटे राजा का, देखा शरीर सब जर्जर है ।
मानो सूरज के छिपने से रह गया कमल कुम्हलाकर है ॥
वे काली मटियाली अलकें—लटकीं जो दायें बायें हैं—
भाई की विरह-वेदना में सचमुच बन गई घटायें हैं ॥
घर में तपसी की तरह—देख भरत का वेष ।
ब्राह्मण भूला अपनपौ—पुलकित हुआ विशेष ॥
बोला—"राजर्षि सुनो जिसका तुम ध्यान रात दिन करते हो ।
जिसके दर्शन को भरतराज माला पर घड़ियाँ गिनते हो ॥

पुष्पक पर वानर-मण्डल में अपनी छटा दिखाता है ।
लक्ष्मण सीता के सहित वही–अवधेश अवध में आता है ॥"
मधुर वचन यह विप्र के–थे मधुरस की धार ।
मरते विरही में हुआ–नव जीवन–सञ्चार ॥
वह हर्ष बढ़ा उल्लास बढ़ा–कवि से भी कहा नहीं जाता ।
लेखनी लिखे भी तो कैसे—जब उससे उठा नहीं जाता ॥
समझेंगे भावुक भक्त दशा श्रीभरत भक्त मदमाते की ।
भाई भाई जानें–भाई भाई भाई के नाते की ॥
कहा भरत ने उसी क्षण होकर प्रेम-विभोर ।
"हे द्विजवर, तुम कौन हो? आए जो इस ओर ॥
यह सुनते ही कपि छुप न सका क्षण भर में बन हनुमान गया ।
तब रामदास को–उसी समय वह राम-भक्त पहचान गया ॥
हनुमत् ने कहा–"सूचना दूँ, था यही काम भगवन् मेरा ।
हे भक्तशिरोमणि भरतलाल, करिए स्वीकार नमन मेरा ॥"
रोम रोम प्रमुदित हुआ, बढ़ा प्रेम–उन्माद ।
मिले अञ्जनीलाल से भरतलाल, साह्लाद ॥
"क्या कहा? उदित हो रहा सूर्य? कष्टों की रात मिटाने को ।
तो आँखों तुम भी हो तैयार–स्वागत का अर्घ्य चढ़ाने को ॥
वानरवर तुमने प्राण दिया, वह अमृत सँदेश सुनाया है ।
हो सकता उऋण न भरत कभी युग-युग तक ऋणी बनाया है ॥"
शान्त अनेक प्रकार कर, विविध भाँति दे धीर ।
आए राघव के निकट, विदा माँग बलवीर ॥
पाते ही यह सूचना 'आते हैं श्रीराम' ।
अवधपुरी बनने लगी–एक अलौकिक धाम ॥

श्रीराम बिना-जो रामपुरी, श्रीहीन दिखाई देती थी ?
वह आज हर्ष से फूल उठी-रङ्गीन दिखाई देती थी ॥
जो कली कभी मुर्झाई थी, इस समय खुल पड़ी, खिल आई ।
जिस जगह अँधेरा रहता था-उस जगह धूप सी खिल आई ॥
पतझड़ के पीले वृक्षों पर-छाया मधुमास निराला था ।
माली को आया हुआ जान, पत्ता पत्ता मतवाला था ॥
सरयू की लहरें उठ-उठकर स्वागत के गीत सुनाती थीं ।
वृक्षों की लता लहलहाकर-फूलों का फ़र्श बिछाती थीं ॥

कूपों में मानो भरा अमृत सरीखा नीर ।
तालाबों में आगया—चन्द्रलोक का चीर ॥
राम-दरश की—प्रजा में-ऐसी उठी उमङ्ग ।
छोड़ छोड़ गृह कार्य सब-चले भरत के सङ्ग ॥

इतने में नेत्र शत्रुहन के आकाशमार्ग पर जाते हैं ।
सानन्द शब्द निकाला मुख से--"अवधेश अवध में आते हैं ॥"
इतने में वह पुष्पक विमान, कुछ और समीप उतर आया ।
टकटकी बाँध देखा सबने—नभ से भूमण्डल पर आया ॥
"जय जननी जन्मभूमि" कहकर, राघव ने शीश झुकाया जब ।
सम्पूर्ण साथियों के समेत, पुष्पक पृथ्वी पर आया तब ॥
शत-शत कण्ठों से उसी समय, रघुपति की जय-जयकार हुई ।
फिर धीरे धीरे-'मेरे प्रभु'--यह मीठी--सी झङ्कार हुई ॥
उस अवध-तपस्वी की गति पर-उपमा सकुचाकर आती है ।
मानो सागर से मिलने को गङ्गा की धारा जाती है ॥
जब चित्रकूट में था मिलाप तब विजयी थे श्रीरघुराई ।
पर यहाँ चरण छूकर पहले-जय भरतलाल जी ने पाई ॥

दोनों के रूप साँवले थे, दोनों के तन पर गाती थीं ।
चौदह वर्षों के यतियों की—एड़ी तक जटा सुहाती थीं ॥
जब मिले परस्पर दोनों ही, दोनों को दर्शक भूल गए ।
श्रीराम कौन ? श्रीभरत कौन ? यह चतुरानन तक भूल गए ॥
इस भ्रात-मिलन ने रँग बदला, जब अपने आप अयोध्या का ।
शारदा पुकार उठी तब—'यह है भरत-मिलाप अयोध्या का' ॥

गुरु पद-रज मस्तक चढ़ा, भेंटे सबके साथ !
फिर लक्ष्मण से इस तरह बोले श्रीरघुनाथ ॥

"मैं सीता सहित प्रथम मँझली माता से मिलने जाऊँगा ।
फिर छोटी, तत्पश्चात् बड़ी माता से मिलने जाऊँगा ॥
सौमित्र, सुमित्रा माता की सेवा में तबतक जाओ तुम ।
वे आतुर होंगी मिलने को, उनके समीप हो आओ तुम ॥

इतना सुनते ही चले लषणलाल निज धाम ।
तब बोले श्रीभरत से रघुकुलभूषण राम—

"बनवासी वीर वानरों को—हे बन्धु शीघ्र ठहराओ तुम ।
इनके स्वागत सत्कारों का पूरा प्रबन्ध कर आओ तुम ॥
यह मेरे सच्चे संगी हैं, इन सबका श्रम हरना पहले ।
इनकी सेवा, इनका आदर, हे भरतलाल, करना पहले ॥"

"जो आज्ञा"—कह चल दिए—इधर भरत सानन्द ।
कैकेयी माँ के उधर पहुँचे आनँदकन्द ॥
वैदेही पैरों पड़ी, प्रभु ने किया प्रणाम ।
कैकेयी छाती लगा, बोली—"बेटा राम—
मेरी आज्ञा से तुमने—सम्बन्ध बनों से जोड़ा है—
मेरी ही आज्ञा से तुमने—यह राज्य भरत को छोड़ा है ॥

वे आज्ञाएँ स्वीकारी हैं-तो अब भी कुछ स्वीकार करो ।
यह अन्तिम आज्ञा है मेरी, रघुनायक अङ्गीकार करो ॥
मेरे मन की सम्पूर्ण ग्लानि, हे राम तुम्हें धो देना है ।
रघुकुल का पावन सिंहासन, रघुकुलपति होकर लेना है ॥
जो माता तुमसे राज्य छीन, तुमको वन में भिजवाती है ।
वह ही माता, वह ही जननी, अब राजमुकुट पहनाती है ॥"

यह कहते-कहते जभी, ले आई वह ताज ।
तब माता से इस तरह—बोले श्रीरघुराज ॥

"सेवक तो केवल आज्ञा का पालन ही करना सीखा है ।
बन और राज्य की चर्चा क्या आज्ञा पर मरना सीखा है ॥
वह आज्ञा भी सिर पर ली थी, यह आज्ञा भी सिर पर लूँगा ।
अभिलाषा नहीं मुकुट की है, पहनाती हो तो पहनूँगा ॥
पर यह अवसर है नहीं मात, राजा बन मुकुट पहनने का ।
यह दिन तो है श्रीचरणों की रज को मस्तक पर धरने का ॥"

माता बोली-"ठीक है, रहा न मुझको ध्यान ।
एक लहर थी उसी में-खो बैठी थी ज्ञान ॥
अच्छा अब मैं करूँगी समयोचित ही काम ।
आती है माता अभी, ठहरे रहना, राम ॥"

यह कहकर चली गई मैया रुकने की आज्ञा दिए हुए ।
अत्यन्त शीघ्र ही फिर आई आरती हाथ में लिए हुए ॥
जिस ज्योतिर्मय की दिव्यज्योति-त्रिभुवन में ज्योति जगाती है ।
उस सूरजवंशी सूरज को आरती माता दिखलाती है ॥
यह रीति कर चुकी जब मैया तो फिर वात्सल्य छलक आया ।
चौदह वर्षों का पाप धुला मुखड़े पर पुण्य झलक आया ॥

कैकेयी की दशा का—ऐसा पड़ा प्रभाव ।
गिरी राम के चरण में, कुबरी ले सद्भाव ॥
मन्थरा न आज मन्थरा है—बावली और दीवानी है ।
मन ही मन सिर से पाँव तलक लज्जित है, पानी पानी है ॥
अत्याचारों पर एक दिवस—अत्याचारी पछताता है ।
जब सज्जन 'क्षमा-शस्त्र' लेकर, उसका सब गर्व मिटाता है ॥
यह परिवर्तन देखकर, मुस्काए रघुनाथ ।
उठा लिया हित-भाव से उसको हाथों हाथ ॥
बोले—"मन्थरा हुआ है क्या ? रोती है अकुलाती है क्यों ?
तूने जो किया ठीक ही था, अब इतना वह पछताती है क्यों ?
जो राजा होने वाला था, उसकी वह शिक्षा दिक्षा थी ।
बनवास नहीं था, राघव को—संयम की एक परीक्षा थी ॥
जो बीत गई, सो बीत गई, भूलो उन पिछली बातों को ।
संयोग सूर्य ने मिटा दिया—उन वियोग वाली रातों को ॥"
विदा मन्थरा को किया, समझा विविध प्रकार ।
तब कौशल्या के चले, कोशल-राजकुमार ॥
परिवर्तन देख चरित्रों के—मन ही मन हँसते जाते थे ।
माया की लीला देख-देख—मायापति भी मुस्काते थे ॥
सोचा—मेरे ही प्यारों को क्या नाच नचाया माया ने ।
चौदह वर्षों में उलट-पुलट, कितने दिखलाए माया ने ॥

❀ गाना ❀

पलटती है जमीं ऐसे पलटता है ज़मां ऐसे ।
उजड़ते और बसते हैं हज़ारों गुलसितां ऐसे ॥
महल होते हैं खंडहर फिर, वही खंडहर महल होते ।
बिगड़ते और बनते हैं मकीं ऐसे मकां ऐसे ॥
जहां पर रात आती है—वहीं दिन भी नुमायां है ।
तमाशे करते रहते हैं—जमीनों—आसमां ऐसे ॥"

इधर लषण जी ने जभी, माँ को नाया माथ ।
माँ ने सुत के शीश पर-धरा प्यार का हाथ—
बेटे, तुझ जैसे बेटे पर-माता फूली न समाती है ।
जिस माँ का ऐसा बेटा है, निश्चय वह धन्य कहाती है ॥
हे कर्मवीर तुझपर तेरी, जननी बलिहारी जाती है ।
जी भरकर हृदय लगाने को—उमड़ी आती यह छाती है ॥"
इसी तरह कहती हुई-बढ़ी मात तत्काल ।
लिया कलेजे से लगा-अपना प्यारा लाल ॥
फिर बोली-"सच कहना लालन, मेरी भी कभी याद आई ?
यह भी बतलाना उस बन में, राजी तो रहा बड़ा भाई ?
इन नन्हे नन्हे हाथों ने-असुरों के दल को संहारा ?
उस इन्द्रजीत से योद्धा को क्या सचमुच तूने ही मारा ?
लक्ष्मण ने जिस क्षण सुने माता के यह बैन ।
भरे प्रेम-आसुओं से—उस बेटे के नैन ॥
बोले—"हे माता, असुरों का दल कब मैंने संहारा है ।
घन के समतुल्य नादवाला-घननाद न मैंने मारा है ॥
सब कृपा तुम्हारी ही तो थी--जो मार्ग मुझे बतलाती थी ।
मन में बैठी माँ की प्रतिमा मेरा उत्साह बढ़ाती थी ॥
'खलदल दलने वाले' मुझको--आदेश तुम्हारे ही तो थे ।
'कर्तव्य छोड़ना मत'--ऐसे, उपदेश तुम्हारे ही तो थे ॥
इसलिए बात यह सच्ची है, वह सभी प्रसाद तुम्हारा है ।
जितनी भी मुझे सफलता है, माँ आशीर्वाद तुम्हारा है ॥
जो बालक अपनी माता का आज्ञापालक बन जाता है ।
आवाज धर्म की कहती है-वह ही सब कुछ कर पाता है ॥"

माता फिर पुलकित हुई, सुन बेटे के बैन ।
रोम-रोम हर्षित हुआ, सजल होगये नैन ॥
सिर ऊँचा कर बोली तुरन्त—"अब है फिर मातृ-प्रसाद यही ।
भाई के भक्त सदैव रहो—पालो सदैव मर्याद यही ॥
अपने भक्तों में राम—तुझे अति ऊँचा पद लक्ष्मण देंगे ।
अपराध क्षमा होंगे समस्त जब वे निज निकट शरण देंगे ॥
होगा अवश्य तू जगत्पूज्य, तूने निज धर्म सुधारा है ।
जिसने—माँ को प्रसन्न रक्खा—वह ईश्वर तक को प्यारा है ॥
माता के यह वचन सुन—बेटा हुआ निहाल ।
फिर श्रीचरणों में गिरा—गद्‌गद् हो तत्काल ॥
जीवन को सफल समझ—लक्ष्मण, जब चले वहाँ से हर्षाते—
तो तपस्विनी बाला की भी आगई याद जाते जाते ॥
चुपचाप कहा मन ने—"देखें, अच्छी तो है उर्मिला प्रिया !
विरहानल में है तपी, किन्तु—जीती तो है उर्मिला प्रिया ॥"
यह ही विचारते हुए बढ़े—पर झिझक गए, बढ़ सके नहीं ।
जब नेत्र विरहिणी पर पहुँचे—पग ठिठक गए, बढ़ सके नहीं ॥
देखा चौकी पर पुजारिणी पति का आराधन करती है ।
सम्मुख है चित्र प्राण प्रिय का—उसका ही पूजन करती है ॥
यह दृश्य देख प्रेमी प्रियतम, साहस कर आगे जा पहुँचा ।
गुड़ियों का खेल समाप्त हुआ—जब सच्चा बालम आ पहुँचा ॥
उठी चौंककर तुरत ही, पति की प्यारी नारि ।
पति के चरणों में पड़ी, पतिव्रता सुकुमारि ॥
कह उठी चित्र से—'चित्रदेव, पूरा होगया आज अर्चन !
जबतक ईश्वर था निराकार—जबतक ही था तेरा पूजन ॥

साकार होगया निराकार तो उसका ही पूजन होगा।
चन्दन चावल की भाँति आज अर्पण सब तन मन धन होगा॥"
चौकी पर पतिदेव को, सादर कर आसीन।
चरणामृत लेकर हुई भक्ति-भाव में लीन॥
मुस्काते हुए लषण बोले—"उर्मिले, प्रसन्न देवता है।
गृहलक्ष्मी को लक्ष्मण क्या दे? वह बारम्बार सोचता है॥
तन तेरा है, मन तेरा है, धन तेरा लक्ष्मण-तेरा है।
फिर बता कौन सी वस्तु रही—देवता जिसे दे सकता है॥
हम तुमने-कर्तव्य का पालन किया यथार्थ।
दोनों ही के होगए—जीवन आज कृतार्थ॥
माता जिस जगह सुमित्रा हैं जिस गृह तुमसी गृहलक्ष्मी है।
लक्ष्मी ने पाया श्रेय वहाँ तो बात कौन अचरज की है?
अच्छा, प्रियतमे-क्षमा [illegible] अत्यधिक नहीं ठहरूँगा मैं।
माँ कौशल्या की पदरज से-अब जीवन धन्य करूँगा मैं॥
स्वामी के यह वाक्य सुन, दासी हुई उदास।
बोली-"क्या अब जाउगे बड़ी मात के पास?
स्वामी, अत्यन्त शीघ्र आना-यदि अधिक देर हो जाएगी—
तो अब बल रहा न प्रबला में-जो मूर्ति ध्यान में लाएगी॥
चौदह वर्षों का विरह सहा, पर अब क्षणभर का सहन नहीं।
क्या जानें, क्या होगया आज, दर्शन से भरते नयन नहीं॥
अच्छा, यदि यह ही इच्छा है-तो मैं भी लाभ उठाती हूँ।
माता जी के ही साथ साथ-कौशल्या माँ के आती हूँ॥"
सेवक को होता सदा, सेवाव्रत से प्यार।
इस असार संसार में—सेवा ही है सार॥

## ❀ गाना ❀

—०—

सृष्टि में सेवा ही है सार ।
सेवा के मग का जग में—बहुत बड़ा विस्तार ।
नर से लेकर नारायण एक, हैं इसके आधार ॥
सेवा करना सहज नहीं है, दुस्तर व्यापार ।
इसका पालन महा कठिन है, कहते शास्त्र पुकार ॥
नारायणमय सृष्टि समझकर, ले जब सेवा भार ।
तब सेवक का भवसागर से हो क्षण में उद्धार ॥

—:०:—

इस प्रकार निज महल से चलकर लक्ष्मणलाल ।
कौशल्या के भवन में—पहुँच गए तत्काल ॥
वहाँ सिया के साथ जब प्रभु ने किया प्रणाम ।
बूढ़ी माता ने कहा—"प्रथम बता यह राम—

है कहाँ सम्पदा वह मेरी—जो बन—जाते दी थी तुझको ?
बहुमूल्य लच्छ-मणि सी वह मणि, सङ्कट में सौंपी थी तुझको ॥"
मुस्काकर लीलामय बोले—"वह मणि सँभालकर रक्खी है ।
बन की झाड़ियों झाँकड़ों से, अब तक उजालकर रक्खी है ॥"

इतने में आए लषण और नवाया माथ ।
प्रभु ने माँ के हाथ में दिया अनुज का हाथ ॥

तब बोली मैया—"लक्ष्मण को सम्मुख पाकर मैं धन्य हुई ।
इस प्राणों से प्रिय लालन पर बल-बल जाकर मैं धन्य हुई ॥
कह दूँगी बहन सुमित्रा से तू मुझे सौंप दे लक्ष्मण को ।
बदले में इसके चाहे तो लेले इस रघुकुल भूषण को ॥

"हो दोनों की माँ तुम्हीं, फिर दो की क्या बात !"
चौंक पड़ी यह बात सुन श्रीकौशल्या मात ॥
सम्मुख देखा तो यह कहती श्रीमती सुमित्रा दीख पड़ी ।
पीछे-पीछे वह लाजभरी कुलवधू उर्मिला दीख पड़ी ॥
आते ही कहा सुमित्रा ने—"जीजी, किसने बहकाया है ?
बेटा है लषण सुमित्रा का, यह भेद-भाव क्यों आया है ?
पहले हैं पुत्र बड़ी माँ के, फिर मँझली माँ के नाते हैं ।
मँझली माँ के पीछे—छोटी माता के माने जाते हैं ॥
सबसे छोटी इस माता को ऊँचे पद पर रखती हो तुम ।
कहदो-कहदो सच्चे जी से, अन्याय नहीं करती हो तुम ?"
"बहन सुमित्रा ठीक है, यही ठीक है बात ।"
भरत सहित आई वहाँ श्रीकैकेयी मात ॥
बोली—"यह नियमोल्लंघन कर, कैकेयी सब कुछ खो बैठी ।
लाञ्छित, अपमानित, व्यथित, घृणित, निर्जीव जीवसा हो बैठी ॥
यह सच है-मेरा पतन हुआ--'सुत राजा हो'--इस चाहत से ।
पर, कलङ्किनी बन ही बैठी-इतिहास-लेखकों के मत से ॥"
कौशल्या कहने लगीं-"करो न अब सन्ताप ।
बीती बात बिसार दो, छोड़ो पश्चात्ताप ॥
जिस नीच विचारों वाली ने, तुम पर निजरंग जमाया था ।
वह ही है सूत्रधार इसकी, उसने ही नाट्य रचाया था ॥
लेखक बिन जाने, बिन समझे, अपयश तुमको कैसे देंगे ?
दासी की दूषित लीला को क्या नहीं आँख से देखेंगे ?
इन वीर बालकों की सच्ची--तुम वीर मात कहलाती हो ।
कहलाना क्या ? तुम तो रण में अनहोनी कर दिखलाती हो ॥

मेरी सम्मति से ऐसा ही विधना के मन को भाया था !
जिसके कारण यह फूट पड़ी, हम सब पर दुर्दिन आया था !!
जो कुछ हो तुम निर्दोषिनि थीं, वह कुबरी भी निर्दोषिनि थी !
होनी होने ही वाली थी, वह ही इन सबकी बैरिनि थी ॥
तू मुझको सगी बहिन-सी थी, वैसा ही तुझे चाहती हूँ ।
सच कहती हूँ, कैकेयी, अपने से-अधिक मानती हूँ ॥
बड़ी मात के वचन से-था प्रसन्न हर एक ।
कुछ क्षण तक सब मौन थे छोड़ विचार अनेक ॥
इस शान्ति और सन्नाटे को, लक्ष्मण की माता ने तोड़ा ।
कह उठीं-"मंगलाचार करो-रहने दो अब पिछला रोड़ा ॥
राज्याभिषेक का समय निकट, पल-पल पर आता जावा है ।
रनिवासों में अपना रहना इस अवसर नहीं सुहाता है ॥"
थाल आरती का दिया-कौशल्या के हाथ ।
कौशल्या ने आरती-किया प्रेम के साथ ॥
माता बलिहार हो रही थीं श्रीरामचन्द्र मुस्काते थे ।
कैकेयी, लषण, सुमित्रा सब इस छवि पर वारी जाते थे ॥
सुरगण निहार ऐसी झाँकी, अपने को आज भुला उट्ठे ।
राज्याभिषेक सन्निकट जान-नभ से दुन्दुभी बजा उट्ठे ॥
आशिष जब दे रही थीं श्री कौशल्या मात ।
तभी शत्रुहन ने कही आकर यह प्रिय बात ॥
आज्ञा है गुरु की—"भाई जी, राजसी वेष में सज्जित हों ।
राज्याभिषेक के मण्डप में, हम सबके सहित उपस्थित हों ॥
चमके तब भाग्य अयोध्या का, हर्षित प्रत्येक नारि नर हो ।
जब जटाजूट के बदले में रघुकुल का मुकुट शीश पर हो ॥"

माताओं से हो विदा, कर सानन्द प्रणाम ।
चले नहाने के लिए—लषण-सहित श्रीराम ॥
वह समय आगया मुखड़ों से जब जटाजूट हटने को थे ।
चन्द्रमा-सूर्य के आगे से काले बादल फटने को थे ॥
रघुनन्दनजी की जटा भरत-जब निज हाथों निबारते थे—
तब भरत भ्रात की जटा-राम अपने कर से उतारते थे ॥
कुछ समय तलक यह दृश्य रहा-जब तलक जटाएँ हटीं नहीं ।
पर्दे में था तब तक प्रकाश-जब तक वे बदली फटीं नहीं ॥
तीनों भ्राताओं सहित, न्हाए कृपानिधान ।
पूजन कर त्रिपुरारि का, दिया विविधविधि दान ॥
किया राजसीरूप में—अनुजों ने शृङ्गार ।
चले साथियों के सहित, राम राजदर्बार ॥
जानकी-प्रभा के साथ-साथ--जब रामचन्द्र-रवि उदित हुए ।
पुरजन-मन्त्रीगण के समेत मुनिवर वशिष्ठ अति मुदित हुए ॥
बोले-"वह मणि से जटित खचित सिंहासन शीघ्र बिछाओ तो ।
दामिनिद्युति को दलनेवाला-दैदीप्य मुकुट ले आओ तो ॥"
आज्ञा सुन सभी प्रबन्धकजन-जुट गए सामयिक साधन पर ।
मिथिला की श्री--समेत रघुपति आसीन हुए सिंहासन पर ॥
विप्रों के वृन्द उच्च स्वर से, वेदों के मन्त्र सुनाते हैं—
तब राजा रामचन्द्रजी को, गुरु राजमुकुट पहनाते हैं ॥
महलों में मङ्गलगान हुआ, द्वारे पर बाजे बजते हैं ।
शुभ बेला जान वशिष्ठ गुरू कुंकुम से टीका करते हैं ॥
यह मनचीता अवसर निहार--सुर नर मुनि सब हर्षाते हैं ।
'जय राजा रामचन्द्र' कहकर-देवता पुष्प बरसाते हैं ॥

शङ्कर ने उसी समय आकर--आनन्द--घटा बरसा ही दी ।
श्रीसीता-रामचन्द्रजी की-जय तीन बार बुलवा ही दी ॥
बोले—"देखो तो झाँकी यह--क्या छटादार छवि छाजी है ।
दाएँ रघुराज बिराज रहे—बाँए वैदेही राजी है ॥

## ❀ गाना ❀

—०—

नमामि भक्तरंजनं सुरारिदर्पभंजनं ।
गुणाकरं दयापरं, नमामि शीलसागरम् ॥
अनुपरूपरूपिणं, मनोज्ञमंजुभूषणं ।
विधानज्ञाननायकं स्वभक्तमोददायकम् ॥
विपत्तिविघ्नवारणं, विपन्नशान्तिकारणम् ।
अनन्यहर्षवर्द्धनं, समस्तलोकनायकम् ॥
प्रफुल्लपद्मलोचनं, प्रचण्डपापमोचनं ।
विनयविवेकमन्दिरं विभुं सुशीलसुन्दरम् ॥
विशोकशोकनाशनं सदा सुखप्रकाशकम् ।
नमामि ते कृपामयं, प्रभामयं निरामयम् ॥"

—: ० :—

उठे विभीषण सभा में, गर्व-सहित-तत्काल !
पहनाई अवधेश को, एक रुचिर मणिमाल ॥
स्वीकृत कर उपहार वह—विहँसे दीनदयाल ।
तुरत सिया के कण्ठ में दी वह माला डाल ॥
मणि-माल गले में सीता के खिल-खिलकर खुलती जाती है ।
उपमा तो एक मिली--फिर भी, लिखते लेखनी लजाती है ॥
वह वक्ष इन्दिरा पूजन के मन्दिर की भाँति सुशोभित है ।
मणिमाल नहीं दीपावलि की दीपावलि हुई प्रकाशित है ॥
श्रीजी ने कुछ समय तक, पहनी वह मणिमाल ।
फिर हनुमत् के कण्ठ में प्रेम सहित दी डाल ॥

हनुमत् की दृष्टि चरण पर थी-पर अब माला पर पड़ती है ।
मानो इस माला के भीतर, देखा कुछ और चाहती है ॥
क्षणभर तक रहे देखते फिर, कुछ सूँघा, तोड़ा, दाँतों से ।
दानापन ऐसा दिखलाया दानों को फोड़ा, दाँतों से ॥
वे मनके बेमनके होकर—इस ओर फूटते जाते थे ।
भावों के सुमन विभीषण के उस ओर सूखते जाते थे ॥
आधे से अधिक हुए खण्डित-जब दाने उस मणिमाला के ।
कपिपति से देखा नहीं गया, वे बोल उठे आगे आके—

"हे हनुमत् हे वीरवर, हे बल-बुद्धि के धाम ?
दानी होकर कर रहे-नादानी का काम ॥

बल और बुद्धि दोनों पदार्थ-जग में बिरले जन पाते हैं ।
पर तुममें तो यह दोनों ही, भरपूर दृष्टि में आते हैं ॥
उस दिवस परीक्षा बल-बुधि की, सुरसा तक को दी थी तुमने ।
अब वही बुद्धि, हे बुद्धिमान बतलाउ कहाँ खो दी तुमने ?

जाम्बुवन्त बोले—"मुझे मसल आगई याद—
'बन्दर जाने है भला क्या अदरक का स्वाद' ॥"
मन्द मन्द मुस्कराकर, बोले दीनदयाल ।
"दानों को क्यों तोड़ते, वीर अञ्जनीलाल ?"

कर जोड़ कहा तब सेवक ने-'हो सकता मोल नहीं जिनका ।
अपनी आभा से आभासित करते हैं जो तिनका तिनका ॥
उन 'इष्टदेव' का मुझे पता, इस मणिमाला में मिला नहीं ।
दर्शन मुझको मेरे प्रभु का, इस मणिमाला में हुआ नहीं ॥
हो सकता है वह भीतर हों-इस कारण तोड़ रहा इनको ।
नादानी हो या दानाई, अब तो मैं फोड़ रहा इनको ॥

भीतर भी मिला नहीं प्यारा तो किस मतलब के दाने यह ?
दाने भर मूल्य नहीं रखते वे रामनाम के दाने यह ॥
दीनों के नाथ मिलें इसमें-तब तो निश्चय उपयोगी है ।
अन्यथा दास को मणिमाला—कङ्कर की है, पत्थर की है ॥"

कहा विभीषण ने—"नहीं इसके भीतर राम ।
पर, तुममें तो भक्तवर, व्यापक है यह नाम ॥"
"हाँ व्यापक है देह में—दो अक्षर का नाम ।
रोम-रोम में दास के-रमे हुए हैं 'राम' ॥

यह कहकर नख से चीर दिया, अपना वक्षस्थल हनुमत् ने ।
कर दिया सुविस्मित क्षणभर में-कपिदल जनमण्डल हनुमत् ने ॥
सुग्रीव, विभीषण, जाम्बुवन्त—सबको कौतुक सा बड़ा हुआ ।
दिल में क्या, रोम-रोम में भी, 'श्रीराम-नाम, था लिखा हुआ ॥
श्रीराम-नाम के रँग में अब—बजरङ्ग रँगे ऐसे आकर ।
बरसाने लगे सभा ही में—श्रीराम-रसामृत गा-गाकर ॥

### ❀ गाना ❀

"रटो रे मन राम राम सियाराम—रमा जो है हर ठाम ।
मणि में फणि ज्यों, फणि में मणि ज्यों—
त्यों जग में यह नाम ॥ रटो रे मन० ।
भवसागर में गोता खाना, राम—नाम का मोती लाना ॥
पाओगे अविचलधाम ॥ रटो रे मन० ॥"

—: o :—

पड़े पुत्र पर मात के—जभी अमृत-सम नैन ।
ज्यों का त्यों हत्तल हुआ, मिला पूर्ण सुख चैन ॥
इस प्रकार कुछ दिन रहा, उत्सव विविध प्रकार ।
प्रतिदिन राजा राम का लगता था दर्बार ॥

अन्तरङ्ग में एक दिन, बोले करुणासीव—
"सुनो विभीषण बन्धुवर, सुनो भ्रात सुग्रीव ॥
उपकार असीम किया तुमने, फिर प्रेमयुक्त निःस्वार्थ किया ।
कुछ अर्थ नहीं उसके समान–इतना ऊँचा परमार्थ किया ॥
जिसके डर से अबतक न शत्रु लङ्का में पानी पीता है ।
उस दशकन्धर को कपिदल से, तुम दोनों ही ने जीता है ॥
वध से उसके लंकापुर में पूरा न शान्ति का शासन है ।
फिर राज्य विभीषण ने पाया, भीतर कुछ यह भी अनबन है ॥
है यह ही गति किष्किन्धा में, रुक रही प्रगति जनता की है ।
अङ्गद, सुग्रीव यहाँ पर हैं, रैयत सब बेराजा की है ॥
मैं बार-बार यह सोच रहा–अब किस प्रकार व्यवहार करूँ ?
प्यारों को ऐसे समय रोक, जनता पर अत्याचार करूँ ?
लाचार, कह रहा हूँ जाओ, विद्रोही–दल का दमन करो ।
दो काट अशान्ति शान्ति-शरसे नागरिक कष्ट का शमन करो ॥

इस प्रकार कहते हुए—उठे राम रघुवीर ।
विदा किया आदर–सहित दोनों को दे धीर ॥
आ पहुँचे अङ्गद तभी–जाम्बुवन्त के साथ ।
तब इनसे भी इस तरह बोले श्रीरघुनाथ ॥

"बस्ती क्या, बन भी शान्त रहे–ऐसा प्रबन्ध अब हो भाई ।
रहचुके अवध में, बहुत दिवस, अब घर की भी सुधि लो भाई ॥
जाओ गृह को–पर, ध्यान रहे, बैठे तुम रामालय में हो ।
सोते--जगते, चलते, फिरते इस मन में और हृदय में हो ॥"

जाम्बुवन्त ने तब कहा—"सुनिए कोशलनाथ ।
इन चरणों पर नवा है–बार-बार, यह माथ ॥

यदि मर जाता समरस्थल में तो सच्ची शान्ति प्राप्त होती ।
बूढ़े को थोड़े जीवन में बिछुड़न पीड़ा न व्याप्त होती ॥
यह जर्जर दास चरण तजकर, क्या चैन पायगा तुम्ही कहो ?
सारा धन-धाम तुम्हीं तो हो, फिर कहाँ जाएगा, तुम्हीं कहो ?
पद-पद्मों का प्रेमी भौंरा-कैसे पराग-रज छोड़ेगा ?
इसपर ही जीवन रक्खा है, इसपर ही जीवन खो देगा ॥"
भावभरे उस भक्त के सुने जभी यह बैन ।
भीगे कुछ भगवान् के भक्ति नीर से नैन ॥
अन्तर्यामी को बूढ़े का जब सच्चा प्यार नज़र आया ।
नयनों से भी करुणाजल का-बँधता-सा तार नज़र आया ॥
तब चुम्बक पत्थर के समान-उस प्रिय लोहे को चिपटाकर ।
करुणानिधान होगये विकल रोये उर चिपटा लिपटाकर ॥
सुल्झाकर सूत्र जगत् के जो, हरि--चरणों में आजाएगा ।
हरि उसके आगे ही मित्रो, धागे में बँधा दिखाएगा ॥
प्रभु बोले--भक्तराज जाओ, मुनि बनो, मोह सम्वरण करो ।
कर सहन सहर्ष वियोग-व्यथा, आदेश राम का ग्रहण करो ॥
वामन अवतार प्रथम देखा रामावतार में साथ रहे ।
द्वापर में फिर जब जाऊँ तो इन हाथों ही में हाथ रहे ॥
उस समय तुम्हारी पुत्री को मैं निज महलों में लाऊँगा ।
तीसरी अवस्था में तुमको तीसरा स्वरूप दिखाऊँगा ॥
इसलिए जाउ अगले युग तक, वन में सानन्द निवास करो ।
मन में मेरा आराधन कर, उस शुभ अवसर की आस करो ॥"
मौन होगया भालुपति, मानो है स्वीकार ।
अब अङ्गद बोला—"सुनें मेरी भी सरकार—

मरने के समय पिताजी ने--मुझपर अनन्त उपकार किया ।
कर दिया भेंट इन चरणों में--चरणों ने भी स्वीकार किया ॥
अब तो चित चंचल चिपका है--चरणों में चिन्ताहरण प्रभो ।
क्या अभी छुड़ा दोगे क्षण में ? बोलो भक्तों के भरण प्रभो ॥"

अङ्गद के यह वचन सुन, विहँसे करुणा-ऐन ।
हृदय लगाकर प्यार से--बोले ऐसे बैन--

"किष्किन्धा के युवराज तुम्हें, इतना रहस्य समझाना है ।
राजा बनने के पहले ही तुमको राजा बन जाना है ॥
जनपति ही अपनी जनता का--प्रिय जनक बखाना जाता है ।
राजा का जन साधारण से--होता समीप का नाता है ॥
इतने पुत्रों का पिता तुम्हें--बन जाना बहुत सहज-सा है ।
पर--पिता-धर्म-पालन करना, वास्तव में कठिन समस्या है ॥
सीता तक अत्याचार प्रजा--चुप रह रहकर सह लेती है ।
अत्यधिक सताई जाए तो--सिंहासन भी गह लेती है ॥
युवराज, कुशल शासक बनकर, वह सेवा अङ्गीकार करो ।
इस ओर राज्य का कार्य करा, उस ओर प्रजा से प्यार करो ॥"

तेजस्वी की बात को--काट सका है कौन ?
अङ्गद भी अब होगया--जैसे तैसे मौन ॥
हृदय लगा--तब नाथ ने, दे निज भक्ति-प्रसाद--
वन के सब साथियों को--विदा किया साह्लाद ॥
पवनतनय से 'विदा' की कह न सके प्रभु बात ।
रामरङ्ग में रँगा था--इतना उनका गात ॥
थी--अनन्य--उस भक्त की ऐसी कठिन मरोड़ ।
जाते दिन--सुग्रीव भी, गया अवध में छोड़ ॥

मानो—जन और जनार्दन का—सम्मिलन न रहा अधूरा है ।
उस अशोकवन की जननी का—वरदान होगया पूरा है ॥
छाया की भाँति साथ प्रभु के—रहता वह मात-दुलारा है ।
यदि प्रभु हैं प्यारे के सम्मुख तो प्रभु के सम्मुख प्यारा है ॥

नारद आए एक दिन—करते हरिगुण-गान ।
क्षमा माँगकर शाप की—ली वीणा में तान—

## ❀ गाना ❀

जगतपति, आज का गाना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ।
अवध के नाथ बन जाना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ॥
धरा का भार टाला है, खलों को मार डाला है ।
अयोध्या लौटकर आना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ॥
विराजे आज दाएँ पर, सिया शोभित हैं बाएँ पर ।
चँवर हनुमत् से डुलवाना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ॥
अमन है आज दुनिया में चमन है आज दुनिया में ।
दुबारा सबका सुख पाना सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ॥
समय अब दृष्टि यह आया तो 'राधेश्याम' हुलसाया ।
हमारा आज का गाना—सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ॥

—: o :—

❀ इति ❀